आत्मधर्म

मासिक : वर्ष-२० • अंक-७ • मार्च-२०२६

प्रशममूर्ति भगवती पूज्य बहिनश्री चंपाबेनका

१४ वाँ

सम्यक्त्वजयंती महोत्सव

(गु.) फागुन कृष्णा दसवींका अपूर्व दिन

वांकानेर, सं. १९८९ (गु. चैत्र मासमें लिखा गया) (ई.स. १९३३; उ.व. १९)

स्वस्वरूपका लक्ष्य आते, (गुजराती) फागुन कृष्णा दशमी सोमवारको दोपहरमें ज्ञाताधाराकी वृद्धि होने पर, उस स्वरूपका ध्यान होने पर, उसमें एकाग्र होने पर, उस स्वरूपमें वेग तीव्रतासे आकर उपयोग परलक्ष्यसे छूटकर अपने स्वरूपमें स्थिर होकर, चैतन्यभगवान उस स्वरूपका अनुभव करते थे; अपने निर्विकल्प सहज स्वरूपमें खेल रहे थे, रमण कर रहे थे। अनुपम और अद्भुत ऐसे आत्मद्रव्यकी महिमा कोई अपार है। चैतन्यदेव आनन्दतरंगोंमें डोलते थे।

अहा ! अनन्तकालसे छुपे हुए आत्मभगवान प्रकट हुए। उनका छुपा हुआ ऐसा, अनुपम अमृतस्वाद वेदनमें आया, अनुभवमें आया।

हे श्री सद्गुरुदेव ! वह आपका ही प्रताप है।

अपूर्व आत्मस्वरूप प्रकट हुआ वह परमकृपालु सद्गुरुदेवका ही प्रताप है।

भारतखंडमें अपूर्व मुक्तिमार्ग प्रकाशनेवाले परम उपकारी गुरुदेवको नमस्कार !

आनंदका दिन

वांकानेर वि.सं. १९८९
(ई.स. १९३३)(उम्र १९ वर्ष)
(शामको लगभग ३।। बजे)

चैत्र (गु. फाल्गुन) कृष्णा १० को सोमवार दोपहर सामायिकमें, निजस्वरूप अनुभवमें आया। अनंतकालसे नहीं समझमें आया स्वरूप, समझमें आया। आनंदसागर उछल रहे थे। वह स्वरूप आश्चर्यकारी व अद्भुत है। परम उपकारी परम प्रतापी सद्गुरुदेवको नमस्कार।

आगम महासागरके अमूल्य रत्न

• निर्मल सम्यग्दर्शन किसी दोषकी तरफ दृष्टि नहीं रखता है, वह सकल दोषोंसे रहित परमात्माको श्रद्धापूर्वक देखता है। वह तीन प्रकारके कर्मों पर दृष्टि नहीं रखता है।१४६। (श्री तारणस्वामी, ज्ञानसमुच्चयसार, श्लोक-२५३)

• बहुत कहनेसे और बहुत दुर्विकल्पोंसे बस होओ, बस होओ। यहाँ इतना ही कहना है कि इस परमार्थको एकको ही निरंतर अनुभवो। कारण कि जिनरसके फैलावसे पूर्ण जो ज्ञान उसके स्फुरायमान होने मात्रमें जो समयसार (परमात्मा) उससे ऊँचा, वास्तवमें दूसरा कुछ भी नहीं (समयसार सिवाय दूसरा कुछ भी सारभूत नहीं।) १४७।

(श्री अमृतचंद्राचार्य, समयसार-टीका, कलश-२४८)

• यहाँ कोई जानेगा कि शुभ-अशुभ क्रियारूप जो आचरणरूप चारित्र है सो करने योग्य नहीं है उसी प्रकार वर्जन करने योग्य भी नहीं है।

उत्तर इस प्रकार है—वर्जन करने योग्य है। कारण व्यवहारचारित्र होता हुआ दुष्ट है, अनिष्ट है, घातक है, इसलिये विषय-कषायके समान क्रियारूप चारित्र निषिद्ध है, ऐसा कहते हैं—शुभ-अशुभ करतूति (कृत्य) निषेध्य अर्थात् वर्जनीय है।१४८।

(श्री राजमल्लजी, कलशटीका, कलश-१०८)

• जो जीव, अजीवतत्त्वको कि जो जीवतत्त्वसे विधि द्वारा विभक्त है उसे यथार्थरूपसे नहीं जानते, वे जीव चारित्रवान होने पर भी-चारित्रका अनुष्ठान करने पर भी उस विविक्त शुद्ध और निर्मलात्माको प्राप्त नहीं होते जो कि दोषोंसे रहित है (द्रव्यलिंगी मुनि)।१४९। (श्री अमितगति आचार्य, योगसार प्राभृत, अजीव अधि. गाथा-५०)

• जैसे दुष्कार्यके उत्पादक हेतुको दुष्ट कहते हैं उसी प्रकार अनिष्ट फलदायी होनेसे व्रत किया इष्टार्थरूप नहीं, परन्तु अनिष्टार्थ ही है।१५०।

(श्री राजमल्लजी, पंचाध्यायी, भाग-२, गाथा-५६८)

• जिसके भीतर ज्ञानस्वभावी आत्माका प्रकाश नहीं है उसका व्रत करना तप पालना, क्रिया करना, उपसर्ग सहना निष्फल है। आत्मज्ञान स्वभावके प्रकाश बिना अन्य अनेक प्रकार सर्व ही चारित्र निंदाके योग्य हैं।१५१।

(श्री तारणस्वामी, ज्ञानसमुच्चयसार, श्लोक-२२७)

• पुण्य-पापके कारण संसार वनमें प्रवेश होता है, ऐसा जानकर जो शुद्धबुद्धि है वह पुण्य-पापमें भेद नहीं करता, दोनोंको संसार वनमें भ्रमण करनेकी दृष्टिसे समान समझता है। (श्री अमितगति आचार्य, योगसार प्राभृत, बंधाधिकार गाथा-८०)

वर्ष-20
अंक-7

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्ग दर्शानेवाली मासिक पत्रिका

वि. संवत 2082
March
A.D. 2026

अहो, प्रशममूर्ति पूज्य भगवती माता !

रत्नोंके अक्षरोंसे लिखा जा सके ऐसा आपका पवित्र ज्ञान, आपकी मंगलकारी निज पर साधना हमें आदर्श हो। हे स्वानुभूतिकी मंगल प्रणेता ! आपका गंभीर व्यक्तित्व बतलाता है कि यदि चारगतिके भयंकर दुःखोंसे छूटना हो तो स्वानुभूतिके पंथ पर चलिये। हमारे पर विश्वास करके आप यहाँ आईये...यहाँ आईये। यह स्वानुभूतिके प्रणेता हम खड़े हैं ऐसा हमें सत्के पंथ पर बुला रहा है। हे माता ! विश्वके अचिंत्य जौहरी कृपालु गुरुदेवश्रीको आपकी दिव्य साधनाके लिये शब्द कम पड़ते थे। तो हम पामर प्राणी आपकी भक्ति करनेवाले हैं। हम तो कौन ? तदपि पूज्य गुरुदेवश्रीकी आज्ञा थी कि बहिनके लिये चाहे जितना करो वह कम है, इसलिये आप सदा निरंतर हमारे हृदयमें बसो ऐसी भावना है। हे कृपालु माता ! आज (चैत्र कृष्ण-१०)के मंगलकारी दिन आपके चरणोंमें कोटि कोटि वंदन करके एक ही वरदान मांगते हैं कि हमें आपके साथ शाश्वत रखकर 'मोक्षमूलं गुरुकृपा' हमारे जीवनमें सफल हो। बस ! इसी भावनाके साथ आपको कोटि कोटि वंदन।

बोलीये पूज्य भगवती मातकी जय हो....

सम्यक्त्वजयंति दिनका जय हो.....

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके
९४वें सम्यक्त्वजयंती महोत्सव प्रसंग पर श्रोताओंके साथ हुई

सम्यक्त्वबोधप्रेरक तत्त्वचर्चा

श्रोता :— *सम्यग्दर्शन प्रगट करनेके लिये पहले प्रमाणज्ञानसे पुरुषार्थ करें अथवा ध्रुव–ज्ञायकके बलसे करें? कृपया रीति समझायें।*

पूज्य बहिनश्री :—दोनों साथ हैं। 'मैं ज्ञायक हूँ, ध्रुव हूँ' ऐसा जोर हो और 'पर्यायमें अपूर्णता है' उसका ज्ञान हो—इन दोनों प्रकारसे पुरुषार्थ जाग्रत होता है। आत्मा द्रव्यस्वभावसे शुद्ध है ऐसा जोर होनेपर भी द्रव्यमें शुद्धता है और पर्यायमें अशुद्धता है, ऐसा दोनोंका ज्ञान, प्रमाणमें साथ रहता है। परिणति भले ही द्रव्यपर दृष्टि दे, (दृष्टि भले ही द्रव्यकी हो) तथापि ज्ञान साथ ही रहता है।

श्रोता :— *पुरुषार्थ करनेके लिये जोर किस पर देना?*

पूज्य बहिनश्री :—जोर द्रव्यपर जाता है, परंतु ज्ञान साथ रहता है। अकेले द्रव्यपर जोर जाये और पर्याय कुछ ही नहीं ऐसा माने तो द्रव्यके ऊपरका जोर मिथ्या होता है। द्रव्यपर जोर दे और पर्यायमें राग या कुछ नहीं है ऐसा जाने तो द्रव्यका जोर मिथ्या होता है। दृष्टि और ज्ञान दोनों साथ रहते हैं और तभी उसकी द्रव्यदृष्टि भी सम्यक् है। सम्यग्ज्ञान साथ न हो तो द्रव्यदृष्टि भी सम्यक् नहीं है। भले ही द्रव्यपरका जोर मुख्य रहे तथापि (पर्यायका) ज्ञान साथ रहता है। इसलिये प्रमाणज्ञान किसी कामका नहीं है ऐसा उसका अर्थ नहीं है; द्रव्यदृष्टिकी मुख्यतापूर्वक प्रमाणज्ञान साथ ही रहता है।

श्रोता :— *आत्माको पहिचाननेका अभ्यास किस प्रकार करें? क्या बाह्य कार्योंको छोड़ देवें?*

पूज्य बहिनश्री :—स्वयं अंतरसे खटक रखकर पढ़नेका समय निकाल लेना। ऐसे कार्य नहीं होना चाहिये कि अपनेको विचार–वांचनमें बाधा पहुँचे। इतने अधिक कार्य न हों कि पढ़ने या विचारनेका समय ही न मिले। यदि ऐसा हो तो स्वयं कार्योंको कम करके निवृत्ति मिले ऐसा करना चाहिये। कुछ एक कार्य छोड़ देने चाहिये, परन्तु कितने छूटते हैं वह तो अपनी शक्तिके अनुसार है। अपनेको निवृत्ति मिले, पढ़ने–विचारनेका समय मिले—ऐसे प्रकारके मर्यादित कार्य होवें। गृहस्थाश्रममें अमुक प्रकारके कार्य तो होते हैं, परन्तु

अपनेको निवृत्तिके लिये समय ही न मिले और बोझ बढ़ जाय ऐसा न होवे। कार्य छोड़ने या नहीं छोड़ने वह तो अपनी रुचिपर निर्भर है, किन्तु गृहस्थाश्रममें इतना तो होना चाहिये कि अपनेको पढ़ने–विचारनेका समय मिले।

श्रोता :— *आप किसके बलपर कहतीं थी कि सम्यग्दर्शन इतना दूर है.....इतना दूर है?*

पूज्य बहिनश्री :—ज्ञायकके बलपर कहती थी, ज्ञायकके जोरसे कहा जाता था। ज्ञायकके जोरसे ऐसा लगता था कि सम्यक्त्व निकट है। यह परिणति ऐसी है कि अन्त तक पहुँचकर ही रहेगी, यह पुरुषार्थकी धारा ऐसी है कि वह अंत तक जरूर पहुँचेगी। अपनी उग्रताके आधारसे कहती थी। कब होगा? कोई निश्चित नहीं लगता था और ऐसी कोई खबर भी नहीं थी; परन्तु ज्ञायककी अंतर उग्रतासे, अपनी भावनासे, पुरुषार्थके बलसे कहती थी।

श्रोता :—सर्व प्रथम सम्यग्दर्शन हुआ होगा तब आपको कितना आनन्द–उल्लास आया होगा!!

पूज्य बहिनश्री :—अपनी बात मैं क्या करूँ? जो अनन्तकालसे नहीं मिला था वह मिला उसके आनन्दका क्या कहना!! वह अंशतः आनंद था। अब तो पूर्णताकी भावना होती है। कब मुनिदशा आये! क्षण–क्षण अंतरमें निवास रहे और बाहर न आना पड़े ऐसा दिन कब आये! ऐसी भावना रहती है। चैतन्यमेंसे प्रगट हुआ आनंद वह कोई अलग ही होता है। व्यक्तिगत बात तो क्या करनी? .... अब तो मुनिदशाकी और केवलज्ञानकी भावना होती है कि वह दिन–ऐसा अपूर्व अवसर कब आये कि जब मुनि होकर प्रतिक्षण अंतरमें निवास हो और केवलज्ञान प्रगट हो!—यही भावना रहती है।

श्रोता :— *यह जीव कई बार समवसरणमें हो आया, तथापि सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हुआ, तो उसका क्या कारण? कृपया समझाइये।*

पूज्य बहिनश्री :—उसने अंतरसे भगवानको नहीं पहिचाना, इसलिये ज्योंका त्यों लौट आता है। उसने बाहरसे तो भगवान्‌को पहिचाना कि भगवान् समवसरणमें सिंहासन पर विराज रहे हैं, अष्ट प्रातिहार्य हैं, छत्र–चँवर हैं और शरीर शांत होनेसे वे शान्त हैं।—यह सब हमने देखा; परन्तु अंतरसे भगवान्‌को नहीं पहिचाना, इसलिये लौट आया। भगवान्‌का क्या स्वरूप है, आत्माका क्या स्वरूप है वह नहीं पहिचाना इसलिये लौट आता है।

श्रोता :— *मेरी आयु पूर्ण होनेका समय आ गया है, तो मुझे आत्माका अनुभव करनेके लिये क्या करना चाहिये? वह कृपया संक्षेपमें समझायें।*

पूज्य बहिनश्री :—सबको एक ही करनेका है। आचार्यदेव कहते हैं कि आबालवृद्ध सबको एक ज्ञायक आत्मा पहिचाननेका है, यह एक ही कार्य है। बहुत वर्षों तक सुना है, अब तो बस, एक ज्ञायक आत्माको पहिचानना, वही करना है। ज्ञायक जुदा है और शरीर जुदा है। विभावभाव अपना नहीं है, उससे स्वयं भिन्न है। आत्मा शाश्वत है; आयु और रोगादि सब शरीरको लागू होते हैं, आत्माको कुछ लागू नहीं होता—इस प्रकार आत्माको पहिचानना कि आत्मा ज्ञायक है। देव–गुरु–शास्त्रकी महिमापूर्वक अंतरमें शुद्धात्माको पहिचाननेका प्रयत्न करना। सबको यह एक ही कार्य करना है। मैं ज्ञायकदेव भगवान् आत्मा हूँ, मेरे आत्मामें सर्वस्व–सब कुछ है। मैं अद्भुत, अनुपम, आनंद एवं ज्ञानसे भरा हुआ हूँ, अनन्त प्रभुतासे भरपूर चैतन्य हूँ। मैं एक अद्भुततत्त्व हूँ। शरीरकी चाहे जो अवस्था हो वह मैं नहीं हूँ। मैं तो उससे भिन्न अद्भुत शाश्वत चैतन्य हूँ।—इसप्रकार आत्माको पहिचाननेका प्रयत्न करना।

श्रोता :—*गुरु कैसे होने चाहिये? उन्हें कैसे पहिचाने?*

पूज्य बहिनश्री :—जिन्होंने यथार्थ सत्का स्वरूप प्रगट किया है अर्थात् जो यथार्थ स्वरूपमें परिणमित हो गये हैं तथा जो यथार्थ वस्तुस्वरूप बतलानेवाले हैं, उन्हें सच्चा गुरु कहते हैं। गुरुको स्वयं यथार्थरूपमें पहिचानकर ग्रहण करना चाहिये। इतनी तो अपनी तैयारी होनी चाहिये। अंतरसे इतनी जिज्ञासा प्रगट करके सत्स्वरूप दर्शानेवाले ऐसे गुरुको स्वयं ग्रहण करना। फिर गुरु जो कहते हैं उसका आशय ग्रहण करके स्वयं उस मार्ग पर चले, तो मार्ग प्रगट होता है।

श्रोता :—*शुद्धनयका और सम्यग्दर्शनका विषय क्या एक आत्मा ही है? क्या दृष्टिमें किसी पर्यायका स्वीकार नहीं है?*

पूज्य बहिनश्री :—दोनोंका विषय एक आत्मा ही है, पर्याय नहीं। द्रव्यदृष्टिमें पर्याय नहीं आती। अपूर्ण एवं पूर्ण पर्यायपर भी लक्ष्य नहीं जाता। शुद्ध पर्यायका वेदन होता है, तथापि शुद्धपर्यायपर उसकी दृष्टि नहीं होती। दृष्टि तो शाश्वत अनादि–अनन्त पारिणामिकभावपर है। पारिणामिकभावका भी विकल्प नहीं होता। मैं अनादि–अनन्त आत्मा हूँ, उसपर दृष्टि रहती है। शुद्ध–अशुद्ध किसी भी पर्यायपर दृष्टि नहीं होती, उसका वेदन होता है तथापि दृष्टि उसपर नहीं होती। ज्ञान जानता है कि मेरी साधकदशामें चौथागुणस्थान या छठवाँ–सातवाँ गुणस्थान है, ऐसा ज्ञानमें रहता है इसलिये पुरुषार्थ होने लगता है; पुरुषार्थ करता है, परन्तु दृष्टि तो पूर्णरूपसे द्रव्यपर रहती है। पर्यायका वेदन होता है उसे ज्ञान जानता है।

श्रोता :— *सम्यग्दर्शन प्राप्त होनेपर अंतरमें क्या होता है?*

पूज्य बहिनश्री :—चैतन्य जो कि भिन्न था वह भिन्न स्वरूपसे परिणमित हो गया, संसारसे पृथक् हो गया। उसकी सम्पूर्ण परिणति ही दुनियासे न्यारी हो गई है। विभाव तथा स्वभावदशामें अंधकार–प्रकाश जितना अन्तर हो गया।जो मार्ग सूझ नहीं रहा था वह मिल गया। मार्ग तो मिल गया, परन्तु करनेका अभी बाकी है। अभी अंतरमें स्वयं अपनेरूप–पूर्णतारूप सहज परिणमित हो जाय वह करना बाकी है।

श्रोता :— *क्या सम्यग्दृष्टिको कोई स्पृहा ही नहीं रही?*

पूज्य बहिनश्री :—जिसे सम्यग्दर्शन प्रगट होता है उसकी एकत्वबुद्धि टूट जाती है इसलिये उसे जगत्की कोई स्पृहा नहीं है, बाह्यकी कोई अपेक्षा नहीं है; रागके किसी विकल्पमें रस नहीं है, जगत्के किसी पुण्यतत्त्वके प्रति रस नहीं है; स्पृहा मात्र छूट गई है।

ज्ञानीको एकत्वबुद्धिपूर्वक किसी प्रकारकी स्पृहा नहीं है। यद्यपि पुरुषार्थकी मन्दताके कारण आचरणमें अल्प स्पृहा रहे वह अलग बात है; परन्तु श्रद्धामें तो पहलेसे उसने नव–नव कोटिसे सर्वका त्याग किया है। नव–नव कोटिसे विभाव मुझे नहीं चाहिये; उच्चसे उच्च शुभभावके विकल्पोंको भी मन–वचन–कायासे छोड़ता हूँ। मुझे वे नहीं चाहिये, नहीं चाहिये।—इसप्रकार पहले श्रद्धामेंसे छूट जाता है, पश्चात् आचरणमेंसे भी विकल्प छूट जाते हैं। अस्थिरताके कारण ज्ञानी भले ही किन्हीं बाह्य आचरणोंमें खड़े हों, परन्तु वे सर्व आचरण तिलांजलिरूप हैं। मुझे उनके प्रति कोई स्पृहा नहीं है, किसी विकल्पका अंश मात्र भी मेरा नहीं है। स्वरूपके गुण–पर्यायोंके विचारोंमें रुकना भी मुझे नहीं पुसाता।

श्रोता :— *आत्माका साक्षात्कार करनेमें समय लगे, तो हमें क्या करना?*

पूज्य बहिनश्री :—जबतक राग–द्वेष–मोहमें रुका हुआ है तबतक समय लगता है; इसलिये गुरु एवं आचार्य चाहते हैं कि तू पुरुषार्थ करके अपनी ओर जा। तू भेदज्ञान कर। यह राग है वह तेरा स्वरूप नहीं है, द्वेष तेरा स्वरूप नहीं है, तू उनसे भिन्न है। तू ज्ञाता है, रागादिका ज्ञाता हो जा, साक्षी बन जा; वह तेरा स्वरूप नहीं है; तू पुरुषार्थ कर तो जो विकल्प हैं वे शान्त हो जायेंगे। भेदज्ञान करके आगे बढ़। पहले राग–द्वेष नहीं छूट सकते; प्रथम उनसे भेदज्ञान हो और स्वभावको पहिचाने कि यह मेरा स्वभाव है, यह सब कषाय मुझसे पृथक् हैं, मैं उनसे पृथक् हूँ—ऐसा भेदज्ञान करे; पश्चात् धीरे–धीरे पुरुषार्थ करके उसमें लीनता करते–करते स्वानुभूतिकी उग्रता करता है।

श्रोता :— *ज्ञानीकी अंतरंगदशा कैसी होती है?*

पूज्य बहिनश्री :—ज्ञानीकी अंतरंगदशा कोई अलग ही प्रकारकी है। भेदज्ञानकी सहजधारा निरंतर वर्तती है। ज्ञायककी धारा होनेसे जो–जो विकल्प उठते हैं उन सबसे ज्ञानी भिन्न रहते हैं। ज्ञानी विकल्परूप ज्ञायक नहीं अपितु परिणतिरूप ज्ञायक रहते हैं। जैसे अज्ञानीको अनादिसे एकत्वबुद्धि चल रही है वैसे ही ज्ञानीको भेदज्ञानकी परिणति सहज वर्तती है, सहज पुरुषार्थ रहता है। बाह्यमें सब (गृहस्थजीवन) दिखनेमें आता है, किंतु उनके अंतरंगको ग्रहण करे तो उनकी दशा पकड़नेमें आती है। सम्यग्दृष्टि ज्ञानी बाह्यमें तो गृहस्थाश्रममें रहते हैं लेकिन उनका अंतरंग परिचय हो तो खयालमें आये कि उनका हृदय भीतरमें क्या है? यदि ज्ञानी गृहस्थाश्रममें हों तो उन्हें पहिचानना मुश्किल होता है।

श्रोता :— *जैसा भाव करे ऐसा होगा कि जो होनेवाले होंगे वैसा होगा ?*

पूज्य बहिनश्री :—जीव जैसा भाव करे वैसा होगा और जो होनेवाले होंगे वैसा होगा। दोनोंका परस्पर मेल है। दोनोंमेंसे आत्मार्थीके ऐसा ही लेना कि 'मैं मेरे दोषके कारण अटकता हूँ। 'जैसा होनेवाला है वैसा हुआ' ऐसा एकांत लेगा तो शूष्क हो जायेगा। कुछ भी नहीं कर सकेगा। भगवानने देखे होंगे उतने भव होंगे और वैसा ही होगा (ऐसा माने)। भगवानने ऐसा देखा है कि तू पुरुषार्थ करेगा तो तेरे हाथमें है। यह आत्मा पुरुषार्थ करके आत्माकी ओर झुक सकता है। लेकिन पुरुषार्थ करनेवाला ही ऐसा ले कि मैं (भगवानको) श्रवण करूँ ऐसा उसके हाथमें आये तो वह निश्चित् ही स्वयंकी ओर झुकेगा। यदि उसकी भावनामें ऐसा आया कि होनेवाला है वह होगा ऐसा एकांत ले ले संसार ही होगा।

श्रोता :— *स्वभावको पकड़नेकी कला ज्ञान द्वारा होती है ?*

पूज्य बहिनश्री :—वह ज्ञान द्वारा ही होती है। जो होता है सब कुछ ज्ञान ही होता है । लेकिन ज्ञानके साथ अंदरमें अकेला ज्ञान ही मुख्य होनेसे उसकी उतनी विरक्ति। अंदरसे विरक्ति--ऐसा वैराग्य, ऐसी जिज्ञासा, इतनी लगनी, इतनी महिमा सब कुछ साथमें होता है। यथार्थरूपसे कुछ लगे और मात्र बोलनेरूप ग्रहण हो उसमें कोई यथार्थ कला हाथमें आती नहीं है। अंदरसे लगना चाहिये तो हाथमें आता है।

श्रोता :— *जाननेवालेकी पर्यायको भी करना नहीं ऐसा कहे। उसका जाननेवाला ही मैं हूँ ऐसा ही है न?*

पूज्य बहिनश्री :—जाननेवाली पर्यायका भी तूं जाननेवाला ही है। अर्थात् उसमें 'व्यवहार' नहीं है ऐसा कहनेका आशय नहीं है लेकिन वस्तुदृष्टि करानी है। वस्तुका मूल स्वरूप बतलाता है। अर्थात् वे पर्याय आत्मामें नहीं है ऐसा नहीं है। उसे जाननेकी पर्याय उसमें होती नहीं ऐसा भी नहीं है। यह सबकुछ व्यवहार है। लेकिन दृष्टि तो मूल वस्तुका स्वरूप बतलाती है। तो मात्र ऐसा हो तो फिर बंधके विभावभाव होंगे ही नहीं । मात्र मोक्षकी ही पर्याय होती है। यदि ऐसा हो तो यह जाननेका स्वभाव जो दिखाई देता है उसे भी जान सकेगा नहीं। यदि जाननेका कोई भाव ही नहीं तो ये सभी पर्यायें जाननेकी है, लेकिन तेरी दृष्टि स्वकी ओर कर, ऐसा कहना है। आचार्यदेव, गुरुदेव सभी एक ही बात कह रहे हैं कि तेरी दृष्टि शुद्धात्मा पर कर। वह तेरा स्वभाव है। लेकिन दृष्टिको परसे पलटकर एक अखंड ज्ञायक पारिणामिकभाव पर दृष्टि कर। पारिणामिकभाव अर्थात् एक भाव पर ऐसा नहीं लेकिन एक अखंड द्रव्य पर दृष्टि कर ऐसा कहना है।

श्रोता : *अंतरमेंसे भावना कैसे उत्पन्न हो?*

पूज्य बहिनश्री : उसे उत्पन्न करनेके लिये स्वयंको इतनी लगनी हो, स्वयंको इतनी आवश्यकता लगे कि बस! यह कोई अन्य वस्तुमें रस नहीं लगे, एक चैतन्यकी ओर रस लगे। चैतन्यमें अपूर्वता लगे और उसे उसकी ही अपूर्वता लगे कि उसके बिना चले ही नहीं। चैतन्यकी परिणतिके बिना कैसे चले? ऐसा यदि अंतरमेंसे लगे तो अपने अंतरमेंसे परिणति प्रकट हुए बिना रहे ही नहीं। गुरुदेवने जो मार्ग बतलाया है उसके बिना कही पर भी अंतरमें संतोष न हो। ध्यान करे तो समझ बिनाका ध्यान अंतरमेंसे क्या उसे प्रकटे? प्रकट होगा ही नहीं। ज्ञानपूर्वक ध्यान हो तो स्वभावको पहिचानकर यथार्थ ध्यान होता है। श्रीमद्जी कहते हैं कि 'ज्ञान बिनाका ध्यान तरंगरूप है' ज्ञान बिनाका ध्यान कैसा?

'जान रहा है वह स्वयं ही है' स्वयं अपनेको जान सकता नहीं। स्वयं विभावमें जो सभीका जान रहा है, उस जाननेवालेका अस्तित्व ग्रहण कर। उस जाननेवालेका असाधारण गुण वह जाननेमें आ रहा है। शेष उसमें अनंत अनुपम शक्तिसे परिपूर्ण और वह ज्ञानस्वभाव उसका ऐसा है कि उसे ग्रहण कर सकता है वह न हो तब तक उसकी अपूर्वता लगे। उस ओर उसकी परिणति जाय तो भी ठीक है। तब उसे भावना होती है।

श्रोता :—*सत्संगका माहात्म्य क्या है?*

पूज्य बहिनश्री :—वह स्वयं प्रतीति-अंतरसे विचार करे, निर्णय करे, 'यह स्वभाव वह मैं और विभाव स्वभाव वह मैं नहीं हूं।' उसका यथार्थ जैसा बाह्यमें ऐसा प्रतीत

करे, उसका दृढ़ चिंतवन करना पड़े। कोई निर्णय करना हो अथवा किसी मनुष्यकी परीक्षा करना हो तो जैसे विचार करके निर्णय करता है कि बाह्यमें आवश्यकता लगे कि इसमें हमें लाभ है, इसकी दुकान कैसी है? इसमें लाभ है? तो उसकी परीक्षा करके निश्चित करता है। वैसे स्वयं परीक्षा करते निश्चित करे कि यह मेरा स्वभाव है, विभाव मेरा स्वभाव नहीं है। ऐसी यथार्थ पहिचान करे, प्रतीति करे, तो स्वयं अंत (आत्मा) तक पहुँच सकता है। स्वयं आत्मा ही है अनंत शक्तिसे परिपूर्ण है।

श्रोता :—आपको आत्माकी अनुभूति हुई उसे कहो कि हम जैसे आम मनुष्यहो और उसे आत्माकी अनुभूति हुई हो तो उसके जीवनमें क्या अंतर पड़ता है?

पूज्य बहिनश्री :—उसका जीवन बाहरसे देखना मुश्किल लगता है, लेकिन उसका आत्मा पृथक् ही रहती है उसे जो अंतरमें विकल्प होते हो उससे पृथक्–उससे आत्मा पृथक् रहता है, एकत्वबुद्धि होती नहीं है। शरीरके साथ, विकल्पके साथ एकत्वबुद्धि नहीं होती है उसका आत्मा पृथक् ही पृथक् रहता है। उसे प्रतिक्षण 'मैं जाननेवाला ज्ञायक हूं, ज्ञायक हूं, ज्ञायक हूं, ऐसी उसकी सहज धारा चलती हो, ज्ञायककी धारा और कोईबार उसे विकल्प तूटकर स्वानुभूति–आत्मामें एकाग्र हो जाय कि बाह्यमें क्या होता है ऐसा उसे मालूम होता नहीं है। आत्मामें ऐसा लीन हो जाय और ऐसा अनुपम आनंद उसे आये कि जगतमें किसी वस्तुमें ऐसा आनंद नहीं है। ऐसा अनुपम आनंद उसे प्रकट होता है। उसका आत्मा पृथक् होकर अंतरमें कार्य करता रहता है। उसे भेदज्ञानकी धारा चलती रहती है। लेकिन वह कोई बोलनेसे, परिचयसे उसे खयालमें आये कि इसका हृदय भीतरसे पृथक् है, उसकी दृष्टि कोई अलग कार्य कर रही है उसकी परिणति कोई अलग ही कार्य करती है। आत्माकी अनुभूतिको कोई जगतमें न पहिचान सके ऐसा अनुपम आत्मा है। उसकी अनुभूति उसे हुई है। ऐसी शांति और आनंद यह आकुलतासे छूटकर उसका ज्ञान और ऐसा आनंद स्वभाव--अनंतगुणोंसे परिपूर्ण, अनंत शक्तिसे परिपूर्ण ऐसा चैतन्यदेव विराजमान है उसकी अनुभूति उसे होती है। लेकिन पुरुषार्थ स्वयंको करना है।

सम्यग्दर्शनके बिना ज्ञान चारित्र और तपमें सम्यक्पना आता नहीं है; सम्यग्दर्शन ही ज्ञान, चारित्र, वीर्य और तपका आधार है। जैसे आंखसे मुखकी शोभा-सुंदरता प्राप्त होती है, वैसे सम्यग्दर्शनसे ज्ञानमें सम्यक्पना–शोभा–सुंदरता प्राप्त होती है।

–मोक्षशास्त्र

परमागम श्री प्रवचनसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन

(गाथा ८३-८४ के प्रवचनमेंसे)

अर्हंतके स्वरूपको जानने पर स्व आत्मस्वरूपको जानता है।

अब शुद्धात्मलाभको लूटनेवाला मोह है। उसका स्वभाव और उसके भेद कहते हैं। स्वयंके द्रव्य-गुण-पर्यायके विषयरूपमें जिसको मूढतारूप परिणाम है। उसे मोह कहते है और मोहसे आच्छादित जीव राग-द्वेषको पाकर क्षुब्ध होता है। जिस प्रकार धतूरा पीनेवाले मनुष्यको पदार्थोंका यथार्थ ज्ञान होता नहीं है, पदार्थोंको जैसा है ऐसे वैसे देखता है और कैफमें आकर जो मनमें आये वैसा बोलता है। इसी प्रकार अर्हंतका त्रिकाली द्रव्य, उनकी ज्ञान, दर्शनादि शक्तियाँ और केवलज्ञानादि पर्यायें—ऐसे अर्हंतका द्रव्य-गुण-पर्याय जैसा ही आत्माका शुद्ध स्वरूप है। ऐसा जिस जीवको ज्ञान नहीं वह मोहसे आच्छादित हुआ है।

स्त्री, पुत्रादि अहितकर है और देव-गुरु-शास्त्र हितकर है–ऐसे परपदार्थ जो ज्ञेय है उसके दो भाग करता है वही मोह है। जो जीव परपदार्थमें इष्ट-अनिष्ट भाव करता है वह परद्रव्यको स्वद्रव्य मानता है। ''शरीरके स्पर्श, वर्णादि ठीक हो तो मुझे ठीक हो।''—ऐसा जो मानता है वह परगुणको स्वगुण मानता है। परके द्रव्य, गुण, पर्यायमें अपनापन मानकर मोही जीवने अज्ञानभावको अधिक दृढ़ किया है, वह जीव परद्रव्यको ही हमेशा ग्रहण करता है। वास्तवमें परवस्तु ग्रहण होती नहीं है लेकिन परवस्तु मेरी है। शुभाशुभभाव मेरा है, क्षयोपशम जितना ही मैं हूं।''–ऐसा मानकर विपरीत मान्यता ग्रहण की है। अपना आत्मा ज्ञानस्वरूप है यह भूलकर जलती हुई अग्निके इन्द्रियोंके वश होता है और परपदार्थोंमें ''यह ठीक और यह अठीक'' ऐसा द्वैत नहीं है फिर भी ठीक-अठीकरूप द्वैतपना करता है।

अनंत ज्ञेयों हो फिर भी सभीको एकसमान जाननेका ज्ञेयोंका स्वभाव है और ज्ञाताका स्वभाव भी एक ही प्रकारसे जाननेका है उसे चूककर ज्ञेयोंमें ठीक-अठीकको दो भाग करता है और अपने ज्ञानके भी दो भाग करके खंड करता है वह अधर्मी और अज्ञानी है।

श्री नेमप्रभ जिन-स्तुति	लच्छन वृषभ पांय पिता जास वीरराय, सेना पुनि जिनमाय सुंदर सुहावनी;	विदेहक्षेत्रस्थ जिन-विंशतिका

ज्ञानी जीवोंको साधक अवस्थामें अपनी कमजोरीके कारण अल्प राग-द्वेष होता है, परपदार्थको ठीक-अठीक मानकर राग-द्वेष नहीं है। इसलिये राग-द्वेष इष्ट नहीं है और अपना ज्ञानस्वभाव एक ही इष्ट है–ऐसा मानकर वह अल्प राग-द्वेषको टालनेका प्रयत्न करता है। ज्ञातास्वभाव इष्ट है और परपदार्थ अनिष्ट है ऐसा ज्ञानी समझते नहीं है लेकिन अपना ज्ञातास्वभाव इष्ट है और अपनेमें होनेवाला राग-द्वेष अनिष्ट है ऐसा समझते है इसलिये उसका नाश करके वीतरागी होते है। जैसे बाढके जलके प्रवाहमें पुलके दो टुकडे हो जाते है, वैसे अज्ञानी मोही जीव ज्ञान और ज्ञेयोंमें दो भाग करता है और ठीक अठीककी बुद्धि करके अत्यंत क्षोभको प्राप्त होता है, दुःखी होता है।

इस प्रकार मोह, राग, द्वेष यह भेदोंके कारण मोह तीन प्रकारका है। अब तीन प्रकारके मोहको अनिष्टका कार्य बतलाकर उसका नाश करनेका कहते है।

अनादिकालसे जीव मोह, राग, द्वेषरूप परिणमित होता है इसलिये अनेक प्रकार संसार उत्पन्न होता है इसलिये सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र प्रकट करके मोह, राग, द्वेषको संपूर्ण प्रकारसे नाश करनेयोग्य है।

जैसे दर्पण सभी पदार्थोंको जैसा है वैसा बताता है, कोई पदार्थको ठीक-अठीक कहता नहीं है उसी प्रकार यह ज्ञानस्वभाव दर्पणके समान है। जगतके बदलते हुए पदार्थोंको जाननेका आत्माका स्वभाव है–ऐसा ज्ञान नहीं होनेके कारण मोही जीवका ज्ञान सीमित हो गया है।

शरीरादि परपदार्थ मेरे नहीं, विकार वह मेरा स्वरूप नहीं, हीन पर्याय जितना मैं नहीं, मैं तो ज्ञानस्वरूप हूँ। ऐसी ज्ञातास्वभावकी एकाग्रता करके ज्ञान विकसित होकर केवलज्ञान प्रकट करना चाहिये। उसके बदले अज्ञानीका ज्ञान परमें ठीक-अठीक करके खंडित हो गया है।

(१) हाथीको घासकी परतसे ढका हुआ गड्ढेका अज्ञान होनेके कारण वह गड्ढेमें गिरता है वैसे अज्ञानी मोही जीव पाँच इन्द्रियोंके विषयोंके वश होकर अज्ञानके कारण हीन परिणामका संग करके मिथ्याभ्रांतिके गड्ढेमें गिरता है।

(२) तैयार की हुई हथनीके विषयमें आसक्त होकर, स्पर्श लेने जाने पर हाथी गड्ढेमें गिरता है वैसे अज्ञानी मोही जीव स्त्री, पुत्र, मकान, मित्रादि अनुकूल है–ऐसा जानकर उस

नगरी अजोध्या भली नवनिधि आवे चली,
इन्द्रपुरी पांय तली लोकमें कहावनी।

ओर राग करता है लेकिन रागरूपी गणिका उसे संसारका बंध कराती है।

(३) जैसे हाथीके सामने लड़नेके लिये दूसरा हाथी भेजा जाता है और सामनेवाला हाथी द्वेषके कारण लडने जाता है वहाँ उसके पीछे रहे मनुष्य उसे आकर हाथीको पकड़ लेते है, वैसे रोगी शरीरादि अनिष्ट है, दुश्मन सभी हेरान करते है–ऐसा मानकर प्रतिकूल संयोगोंको दूर करना चाहता है। इस प्रकार द्वेष करते मोही जीव संसारका बंध करता है।

मुमुक्षु जीवोंको तत्त्वका यथार्थ निर्णय करके ज्ञान करना चाहिये। मोह, राग, द्वेष अनिष्टके कारण है और अपना ज्ञानस्वभाव एक ही इष्टका कारण है—ऐसा निर्णय करना चाहिये। स्वरूपके कामीको चिरंजीव सदा सुखी होकर जीवित रहना हो तो अपना ज्ञान-स्वभावका निर्णय करके–भान करना, वह एक ही मोह, राग-द्वेष नाश करनेका उपाय है।

यथार्थ मान्यतासे मोह-भ्रांति टलती है, ज्ञानसे अज्ञान टलता है। स्वभावमें स्थिरतासे राग-द्वेष टालता है। यही सही क्रिया है। जैसे हाथी अज्ञानके कारण राग और द्वेषस अनेक प्रकारके बंधनको प्राप्त होता है। मोही जीव अनुकूल निमित्तकी प्राप्ति और प्रतिकूल निमित्तों दूर करना चाहता है लेकिन परवस्तु मिलना या ना मिलना वह उसके आधिन नहीं है। फिर भी मोह, राग, द्वेष करता है और परवस्तु जो ज्ञेय है उसमें अनुकूल और प्रतिकूल ऐसे दो भाग पडता है और अपने ज्ञानमें खंड करता है।

श्रोता :–तो फिर सत्समागम नहीं करना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सत्समागमकी भावना करना वह इच्छा, व्यवहार और राग है, और अपनेमें एकाग्र होना वह निश्चय और धर्म है। पर जीवके पास कोई बनता नहीं है मात्र भाव करता है। अपनी योग्यता हो तो निमित्तका योग सहज होता है।

श्रोता :–'कुगुरुका संग नहीं करना'–ऐसा कहा है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री :–'कुगुरुकी श्रद्धाका संग छोड़' ऐसा उसका अर्थ है। कुगुरुकी श्रद्धा छोड़कर सुगुरुका राग करना वह शुभराग है, लेकिन सुगुरुसे लाभ मानना वह मिथ्यात्व है। गुरुसे लाभ हो–ऐसा माननेवालेने चैतन्यसे लाभ होता है ऐसा नहीं माना। स्वयं समझे तो गुरुको निमित्त कहा जाता है। (शेष देखे पृष्ठ २० पर)

नेमिप्रभु नाथ वानी अमृत समान मानी, तिहूँ लोक मध्य जानी दुःखको बहावनी;
भविजीव पांय लागै सेवा तुम नित मागै, अबै सिद्धि देहु आगै सुखको लहावनी। १६

श्री इष्टोपदेश पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

प्रवचन नं. ४६ (गाथा-४१)

धर्मी बोलने पर भी मौन हैं

श्री पूज्यपादस्वामी रचित इष्टोपदेश शास्त्रकी यह ४१वीं गाथाका विशदार्थ चल रहा है।

जिसको अपना हित करना हो उसे सर्वप्रथम दृढ़ प्रतीति द्वारा आत्माको अपना विषय बनाना चाहिये। अर्थात् श्रद्धा-ज्ञानमें ऐसी दृढ़ प्रतीति होनी चाहिये कि मैं तो शुद्ध ज्ञान और आनंदका पिंड हूँ। भगवान आत्मा एक समयमें चैतन्यबिंब ज्ञायक स्वरूप विद्यमान है उसे दृढ़ प्रतीतिका विषय बनाना चाहिये।

जिन्हें धर्म करना है–सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रकट करना है उसे श्रद्धा-ज्ञानका विषय आत्माको बनाना चाहिये। आत्माको जो विषय बनाये उसे परद्रव्य मेरे है और उसमें मैं बदलाव करूं तो होगा ऐसी बुद्धिका नाश हो जाता है।

जिन्हें अपना हितका कार्य करना हो उन्हें स्वयंके स्वभावकी अभिमुखता कदापि छोड़ना नहीं चाहिये। कोई संस्कारवश या कमजोरीके कारण राग आ जाय तो भी उसे भला न मानते एक स्वभावको ही हितरूप जानता है। धर्मीको कोई उपदेश करनेका कहे तो धर्मलोभी जीवको देखकर अपनी कमजोरीके कारण उपदेश देनेका भाव हो और उपदेश दे तदपि धर्मीको स्वभावकी अभिमुखता छूटती नहीं है और उपदेशके शब्द या रागकी अभिमुखता-सन्मुखता होती नहीं है।

जैसे कोई दरिद्रताकी इच्छा करता नहीं है लेकिन आ जाती है वैसे धर्मीको कदाचित् राग आ जाय लेकिन उसकी इच्छा होती नहीं है। वे रागके स्वामी होते नहीं है। इसलिये धर्मी बोलने पर भी बोलते नहीं है। बोलनेकी ओर को धर्मीका झुकाव-सन्मुखता-अभिमुखता नहीं है लेकिन बोलनेकी ओर भी धर्मीका झुकाव नहीं है। झुकाव तो एक अपने निधानकी ओर है इसलिये वे बोलते है फिर भी बोलते नहीं हैं।

श्री वीरसेन जिन-स्तुति	महा बलवंत, बडे भगवंत, सवै जिय-जंत सुतारनकौ, पिता भुवपाल, भलो तिन भाल लह्यो निजलाल ऊधारनको;

जैसे कोई जंगलमें गया हो और पांच करोड़का खजाना(कलश) नजर आ जाये तो कोई देख न ले इसलिये उसे ढककर आ जाता है लेकिन उसका लक्ष तो वहाँ ही होता है कि कब मैं उस खजानेको ले आऊँ। वैसे धर्मीको अनंतगुणका निधान अपना स्वभाव देख लिया है। मैं तो अनंत ज्ञान-दर्शन, स्वच्छता प्रभुता आदि अनंतगुणका राशि हूं ऐसी श्रद्धा और ज्ञानदर्शन वर्तता है इसलिये धर्मीका लक्ष तो एक ही है कि मैं कब अपने स्वभावमें एकाग्र होकर निधान को खोलू ! ऐसे धर्मीको निरंतर आत्मसन्मुखता ही रहती है।

अहा ! जगतको मोहने कैसा लूट लिया है कि यह करूँ, वह करूँ.... लेकिन भाई ! एक आँख की पलक भी ऊँची करना वह तेरा कार्य नहीं है। एक जड़ रजकणकी स्वतंत्र अवस्था है और विकल्प उठते है वह भी एक समयका उपाधिभाव है; स्वभाव नहीं। इसलिये जिन्हें स्वभावकी दृष्टि हुई उसे विकल्पमें रुचि होती नहीं है।

अपने ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि हुई ऐसे धर्मीको आत्मज्ञानके अतिरिक्त अन्य कार्योंमें उपयोग जाता है लेकिन अधिक समय रहता नहीं है। कमजोरीके कारण यात्रा, पूजा, भक्ति आदिके भाव आ जाते है लेकिन उसकी अभिमुखता होती नहीं है। भगवान जिन्हें विश्वासमें आ गया उसे अन्य कहाँ रुचि लगेगी ?

श्रोता : व्यवहार प्रथम होता है कि निश्चय प्रथम होता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रथम निश्चय होता है पश्चात् व्यवहार होता है। स्वाश्रय वह निश्चय है उसके बिना पराश्रयरूप व्यवहार कहाँसे होगा ! निश्चयका लक्ष स्वसन्मुख है और व्यवहारका लक्ष परसन्मुख है तो प्रथम परसन्मुखता करे फिर स्वसन्मुखता हो ऐसा कदापि हो सकता नहीं है। सीढ़ी चढ़ना हो तो प्रथम नीचे उतरे पश्चात् ऊपर चढ़ा जाय ऐसा कदापि हो सकता है ?

जीवको धर्म तो करना है लेकिन धर्मी ऐसा आत्मा कैसा है उसकी पहिचान बिना धर्म कहाँसे होगा ? बहिर्मुखकी रुचि तो जीवको अनादिसे है ही। उससे तो कदापि अपना हित हुआ नहीं है–स्वभाव जाननेमें आया नहीं, तो फिर प्रथम पराश्रित व्यवहार हो पश्चात् स्वाश्रित निश्चय हो यह बात कैसे बने ? वस्तुकी स्थिति ऐसी है ही नहीं। प्रथम तो स्वाश्रयसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप निश्चय धर्म प्रकट करे। जब तक पूर्णता न हो तब तक चारित्रकी

पुंडरी सु वासहि रावन पास, कहै तुम दास ऊधारनको,
वीरसेनराय भली भानुमाय, तारो प्रभु आय विचारनको। १७

विपरीततामें दया-दान-पूजा आदिका राग पराश्रितभाव आये बिना रहता नहीं है। उस रागको व्यवहार कहा जाता है। परसमय उपाधिभाव-बंधभाव भी उसे ही कहा जाता है।

स्वाश्रित दृष्टि प्रकट होनेके बाद पूर्णता न हो तब तक पराश्रित ऐसा व्यवहार आये बिना रहता नहीं लेकिन वह दोषरूप है उसका धर्मीको उत्साह होता नहीं है।

श्रोता : व्यवहारको प्रयोजनवान कहा है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहारको जाना हुआ प्रयोजनवान कहा है। आदर करनेके लिये प्रयोजनवान नहीं कहा।

बापु ! तेरी ऋद्धि ऐसी महान है कि उसे वाणी द्वारा कहा जा सके ऐसा नहीं लेकिन उसकी ऋद्धिकी तुझे खबर नहीं है। तू बाह्यमें देख रहा है। ऐसे देखते-देखते अनंतकाल चला गया लेकिन सुख कदापि मिला नहीं। समयसारकी ४१३ गाथामें कहा है कि जीव अनादिसे अनादिरूढ, व्यवहारमूढ, निश्चय अनारूढ है।

स्वाश्रय वह ही मुक्तिका कारण है, पराश्रित व्यवहार तो बंधका कारण है फिर भी अज्ञानीकी दृष्टिमें ऐसा है कि परभावसे मेरा हित होगा। ऐसी दृष्टि हो तबतक स्वाश्रितता आती नहीं है और हित होता नहीं है। बहुत सीधी और सरल बात है लेकिन लोगोंने उसे कठिन मान लिया है।

श्रोता : स्वाश्रित निश्चय और पराश्रित व्यवहार दोनों एक ही समयमें है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों एक ही समयमें है। स्वका आश्रय लेकर जितना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रकट किया उतनी संवर-निर्जरा है और जितनी पराश्रितता है उतना राग है, वह व्यवहार है। ऐसा निश्चय संवर-निर्जरा और व्यवहार-राग दोनों एक समयमें ही साधकको होते है।

भगवान कहते हैं कि तू संपूर्ण व्यवहारको छोड़ दे। बंध अधिकारमें आचार्य कहते है कि भगवानने परद्रव्यको मार सकता हूँ-जीवित कर सकता हूँ ऐसा मिथ्या-अध्यवसायरूप व्यवहार छुड़ाया है उसमें हम तो कहते हैं कि भगवानने पराश्रित ऐसा संपूर्ण व्यवहार छुड़वाया है अर्थात् व्यवहारकी सन्मुखता ही छुड़ायी है। (क्रमशः) ✻

श्री महाभद्र जिन-स्तुति	महाभद्र स्वामी तुम नाम लिये, सीझे सब काम विचारनके, पिता देवराज ऊमादे माय, भली विजया निसतरनके,

अध्यात्म संदेश

(रहस्यपूर्ण चिट्ठी पर परम पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन)

स्वानुभवरूप श्रुतज्ञानकी अचिंत्य ताकत

''चौथे गुणस्थानवालेको मति-श्रुतरूप सम्यग्ज्ञान है, और तेरहवें गुणस्थानमें केवल सम्यग्ज्ञान है। और एकदेश सर्वदेशका अंतर तो इतना ही है कि, मति-श्रुतज्ञानवाला अमूर्तिक वस्तुको परोक्ष, व मूर्तिक वस्तुको भी प्रत्यक्ष या परोक्ष किंचित् व अनुक्रमपूर्वक जानता है, और केवलज्ञान सर्वथा सर्वको युगपद् जानता है; वह (मति-श्रुत) परोक्ष जानता है, और यह (केवलज्ञान) प्रत्यक्ष जानता है. इतना ही विशेष (फर्क) है। परन्तु यदि सर्व प्रकारसे एक ही जाति कहे तो जैसे केवलज्ञानी युगपद्, प्रत्यक्ष, अप्रयोजनरूप, सर्वद्रव्योंको निर्विकल्परूपसे जानते हैं उसीप्रकार यह मति-श्रुतज्ञानी भी जाने,–परन्तु ऐसा तो है नहीं। इसलिये इनमें प्रत्यक्ष-परोक्षका विशेष जानना।

'अष्टसहस्री'में कहा है कि—

स्याद्वाद-केवलज्ञाने सर्वतत्त्वप्रकाशने।
भेदः साक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्त्यन्यतमं भवेत्॥१०-१०५॥

इसका अर्थ :–स्याद्वाद अर्थात् श्रुतज्ञान व केवलज्ञान ये दोनों सर्व तत्त्वोंके प्रकाशनहारे हैं; विशेष इतना कि केवलज्ञान प्रत्यक्ष है और श्रुतज्ञान परोक्ष है; परन्तु वस्तुतः वे भिन्न नहीं हैं।''

देखो ! यहाँ पर तेरहवें गुणस्थानका केवलज्ञान व चौथे गुणस्थानका श्रुतज्ञान–इन दोनोंकी एक जाति किस प्रकार है, और दोनोंमें फर्क किस प्रकारका है, इसके बारेमें स्पष्टता की है।

जैसे अंशी व उसका अंश भिन्न नहीं, वैसे केवलज्ञान व श्रुतज्ञान वस्तुतः भिन्न नहीं हैं। जैसे केवलज्ञान व राग इन दोनोंकी जाति ही भिन्न है, परन्तु केवलज्ञान व श्रुतज्ञानकी जाति वैसे भिन्न नहीं है। सम्यग्दृष्टि श्रुतज्ञानसे भी केवल-शुद्ध आत्माको अनुभवते हैं अतः परमार्थसे उसे 'श्रुत-केवली' कहा है। यदि 'श्रुत' विशेषणको लक्षमें न लिया जाय तो केवल-अकेला

शशि सेवै आय, लगै तुम पाय भले जिनराय ऊधारनके,
किरपा करि नाथ गहो हम हाथ, मिलै जिन साथ तिहारनके। १८

ज्ञान ही रहता है। इस प्रकार श्रुतज्ञानीका ज्ञान व केवलज्ञानीका ज्ञान इन दोनोंकी जाति एक ही है। और सम्यक् श्रुतज्ञानके अंश बढ़ करके केवलज्ञानमें मिल जाते हैं, अतः वे केवलज्ञानके ही अंश हैं; ज्ञानस्वभावकी जातिके वे अंश परके अवलम्बनसे वे नहीं प्रगटे वे तो स्वभावके ही अवलम्बनसे प्रगटे हैं। इस विवक्षासे उनमें एक जातिपना होने पर भी, कुछ विशेषता भी है; केवलज्ञानमें जैसी दिव्य अचिंत्य सम्पूर्ण ताकत है वैसी ताकत श्रुतज्ञानमें नहीं है। केवलज्ञानका सामर्थ्य श्रुतज्ञानसे अनन्तगुना अधिक है। जातिकी तरह सामर्थ्यमें भी यदि दोनों समान होते तो भी केवलज्ञानकी तरह सभी पदार्थोंको प्रत्यक्ष एक साथ विकल्पके बिना जान लेता। परन्तु वह सभी पदार्थोंको प्रत्यक्ष नहीं जान सकता, एक साथ भी नहीं जान सकता, और परज्ञेयोंको विकल्पके बिना भी नहीं जान सकता। अमेरिकामें क्या हो रहा है, रूसमें क्या हो रहा है, दिल्लीमें क्या हो रहा है—ऐसी अप्रयोजनरूप बातोंके जाननेमें श्रुतज्ञानमें विकल्प हुए बिना नहीं रहता, जब कि केवलज्ञान तो अप्रयोजनरूप पदार्थोंको भी विकल्पके बिना साक्षात् जानता है। श्रुतज्ञानको स्वमें जब उपयोग लगा हो तब परका ख्याल नहीं रहता, परंतु केवलीप्रभु तो स्व-पर सभीको एकसाथ जान रहे हैं। अनन्तकाल पहलेकी या बादकी पर्यायोंको भिन्न-भिन्नरूपसे श्रुतज्ञान नहीं जान सकता, जब केवलज्ञानमें तो तीनोंकाल झलक रहे हैं, उसे कोई पड़दा (पट) रुकावट नहीं कर सकता। मतिश्रुतज्ञान तो अमुक पदार्थोंको ही प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष जान सकता है, अमूर्त-धर्मास्तिकायादिको वह प्रत्यक्ष नहीं जान सकता, जितने पदार्थोंको जानता है उनको भी एकसाथमें नहीं जानता, क्रमक्रमसे जानता है, और उसमें भी उनके सभी धर्मोंको नहीं जानता, कुछ ही धर्मोंको जान सकता है; जब कि केवलज्ञानकी तो सम्पूर्ण ताकत व्यक्त हो जानेसे वह सभी ज्ञेयोंको एकसाथ सम्पूर्ण प्रत्यक्ष सर्व प्रकारसे जानता है। ऐसे केवलज्ञानमें व मतिश्रुतज्ञानमें प्रत्यक्ष-परोक्षका जो भेद है एवं उनके सामर्थ्यमें भी जो फर्क है वह जानना चाहिये।

परन्तु यह भेद, आत्माका स्वानुभव करनेमें रुकावट नहीं करता। श्रुतज्ञान भले ही अल्प सामर्थ्यवाला हो तो भी अन्तर्मुख होकर, विकल्प तोड़के स्वसंवेदन प्रत्यक्षसे आत्माका अनुभव करता है; ऐसे अनुभवके बलसे अन्तर्मुहूर्तमें केवलज्ञानको भी साध लेता है। शुद्ध आत्मा-इत्यादि प्रयोजनभूत तत्त्वोंको तो जैसा केवलीभगवानने जाना वैसा ही श्रुतज्ञानी जानता है, इनमें विपरीतता नहीं है। भले केवलज्ञान जैसी अनन्तविध प्रकारोंकी स्पष्टता श्रुतज्ञानमें

श्री सूरप्रभ जिन-स्तुति	जिन श्री देवजस स्वामी, पिता श्रवभूत भनिज्जै, लच्छन स्वस्तिक पांव, नांव तिहुं लोक गुणिज्जै;

न हो परन्तु विपरीतता तो नहीं होती। श्रुतज्ञानने भी सभी पदार्थोंके स्वभावका (उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वभाव, अस्ति-नास्तिस्वभाव आदि स्वभावका) केवलज्ञान अनुसार परोक्ष निर्णय कर लिया है कि जगतके सभी पदार्थोंका स्वभाव ऐसा है। केवली भगवान सभी पदार्थोंकी अवस्था क्रमबद्ध होनेका जानें और श्रुतज्ञानी उससे विपरीत (अक्रम होनेका) जानें–ऐसा नहीं बनता; केवली भगवान ऐसा जाने कि वीतरागभाव सो धर्म है और श्रुतज्ञानी ऐसा जाने कि शुभराग है वह धर्म है,–ऐसी विपरीतता नहीं होती। मार्ग तो जैसा केवली भगवानने जाना श्रुतज्ञानी भी वैसा ही जानता है, उसमें रंचमात्र भी फर्क नहीं है।

इस तरह केवलज्ञान व सम्यक् मतिश्रुतज्ञान एक जातिके होनेसे मति-श्रुतज्ञान केवलज्ञानका भी निर्णय कर लेता है। 'मुझे स्वानुभव हुआ या नहीं, अथवा मैं भव्य हूँ या नहीं, यह केवली जानें, हमें इसकी खबर नहीं पड़ती'–ऐसे वचन ज्ञानीके नहीं हो सकते। अपने स्वसंवेदनप्रत्यक्षके बलसे ज्ञानी तो निःशंक (केवलज्ञान जितना ही निःशंक) जानता है कि मुझे मेरे आत्माका स्वानुभव हुआ, भवकट्टी हो गई, और भव्य तो हूँ ही,–अत्यन्त निकटभव्य हूँ, आत्माका आराधक हुआ हूँ और प्रभुके मार्गमें चल रहा हूँ, अब इस भवभ्रमणमें रुलनेका मुझे नहीं रहा,–ऐसे अंतर आत्मा अपने स्वानुभवकी साक्षी देता है।

प्रश्न : अज्ञानी भी केवलज्ञानका सम्यक् निर्णय कर सकताा है या नहीं?

उत्तर : भाई, केवलज्ञानका सम्यक् निर्णय करने पर अज्ञान नहीं रहता; क्योंकि केवलज्ञानका निर्णय उसी जातिके अंशके द्वारा ही होता है, इसके विरुद्ध भावद्वारा केवलज्ञानका निर्णय नहीं होता। रागसे या अज्ञानसे केवलज्ञानका निर्णय नहीं हो सकता। सामान्यरूपसे वह केवलज्ञानीका स्वीकार भले करता हो परन्तु यदि उसका सच्चा स्वरूप पहिचानके स्वीकार करे तो वह अज्ञानी नहीं रहता,–उसे सम्यग्ज्ञान हो जाता है। यही बात पं. टोडरमलजीने मोक्षमार्गप्रकाशकमें भी कही है : 'अर्हन्तदेवके कोई विशेषण तो पुद्गलाश्रित है और कोई विशेषण जीवाश्रित है, इसको अज्ञानी भिन्न-भिन्न नहीं पहिचानता....जो बाह्य विशेषण हैं उन्हें जानकर उन्हींसे अरहन्तदेवकी महानता वह समझता है, परन्तु जीवके जो विशेषण हैं उन्हें यथावत् न जानकर अरहन्तदेवकी महानता मात्र आज्ञानुसार मानता है अथवा अन्यथा भी मानता है; यदि जीवके यथावत् विशेषण पहिचाने तो मिथ्यादृष्टि रहे नहीं।'

पावहि भविजन पार, मात गंगा सुखधारहिं,
नगर सुसीमा जन्म आय, मिथ्यामति टारहिं,

शंका :—कोई जीव अरहन्तादिका श्रद्धान करता है, उनके गुणोंको पहिचानता है तो भी उसके तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यक्त्व नहीं होता; अतः जिसके अरहन्तादिका सच्चा श्रद्धान हो उसे तत्त्वश्रद्धान अवश्य होता है–यह नियम कैसे सम्भवित है ?

समाधान :–तत्त्वश्रद्धानके बिना अरहन्तादिकके जिन छियालिसादि गुणोंको वह जानता है उसमें पर्यायाश्रित (-देहाश्रित) गुणोंका भी जानपना नहीं होता, क्योंकि जीव-अजीवकी भिन्न जाति पहिचाने बिना अरहन्तादिके आत्माश्रित व शरीराश्रित गुणोंको वह भिन्न भिन्न नहीं जानता;–यदि जाने तो अपने आत्माको परद्रव्यसे भिन्न क्यों न जाने ? श्री प्रवचनसार गाथा ८०में भी यही कहा है कि अरहन्तके द्रव्य-गुण-पर्यायको जो जानता है वह अपने आत्माको जानता है और उसका मोह क्षय हो जाता है। अरहन्तादिका स्वरूप तो आत्माश्रित भावोंके द्वारा तत्त्वश्रद्धान होनेपर ही जाननेमें आता है। अतः जिसके अरिहन्तादिका सच्चा श्रद्धान हो उसे तत्त्वश्रद्धान अवश्य होता है–यह नियम जानना।

(मोक्षमार्गप्रकाशक अध्याय ७ तथा ९)

देख लो यह अरहन्तादिको पहिचाननेकी रीति ! 'अरहन्तादिक' कहनेसे ऐसा समझना कि मुनि या सम्यग्दृष्टि आदि धर्मात्माओंके स्वरूपको यदि उनके आत्मिकलक्षणोंसे यथावत् पहिचाना जाय तो जीवको भेदज्ञान व सम्यग्दर्शन अवश्य होता है। परन्तु यह पहिचानकी रीति रागसे पार है। रागमें स्थित रहके यह पहिचान नहीं होती, ज्ञानभावमें आकरके यह पहिचान होती है। इसप्रकार केवलज्ञानके स्वरूपका निर्णय करनेवाला ज्ञान भी केवलज्ञानकी ही जातिका हो जाता है। इस स्वानुभवज्ञानका स्वरूप बहुत स्पष्ट किया तथा स्वानुभूतिके समयकी खास महिमा समझायी। (क्रमशः) ✻

(पृष्ठ ९ का शेष भाग) (प्रवचनसार प्रवचन)

स्वयं ज्ञातास्वभावी है, कमजोरीके कारण राग-द्वेष होता है और निमित्त पर लक्ष जाता है, लेकिन रागके कारण अनुकूल निमित्त मिलता नहीं है और द्वेषके कारण प्रतिकूल निमित्त टलता नहीं है–ऐसा मोक्षार्थी जीव मानता है और राग-द्वेषको टालनेका पुरुषार्थ करता है। जो जीव ऐसा मानता है कि मेरे ज्ञानका ठहरनेका स्थान निमित्तमें है वह घासकी परतसे ढका हुए गहरे गड्ढे पर चलने जाता है। अज्ञानी जीव ज्ञानतत्त्वकी रुचि छोड़कर निमित्तकी रुचि करके मिथ्यात्वके गड्ढेमें पड़ता है। (क्रमशः)

अनुभवप्रकाश पर प्रवचन

(गतांकसे आगे)

लाखों रुपयेका दान कर–करके, उपवासादि तपश्चर्या करके धर्म मानते हैं और उल्लसित होते हैं। व्रतादि लेकर धर्म मानकर प्रसन्न हो जाते हैं। उनमें आत्माका कल्याण मानकर, वे सब क्रियाएँ करके अपनेको धन्य मानते हैं वे अज्ञानी मूर्ख हैं, उनको आत्माके धर्मकी खबर नहीं है। मिथ्यात्वको दृढ़ करके उसमें धर्म मानते हैं, वे हर्षित हो–होकर संसारमें भटकते हैं। आहारका ग्रहण–त्याग मुझमें है ही नहीं, लक्ष्मी आदि मुझसे पर हैं ऐसा नहीं जानता। आहारदान करे वहाँ साधुको अधःकर्मी एवं उद्दिष्ट आहार देता है और अपनेको धन्य मानता है, परन्तु जो साधु अधःकर्मी अथवा उद्दिष्ट आहार लेता है वह निश्चयव्यवहार दोनों प्रकारसे साधु नहीं है—ऐसा वह नहीं जानता, इसलिए संसारमें भटकता है।

मुनिकी दशा तो ऐसी होती है कि—हमारे लिए आहार बनाया है—ऐसी शंका होने पर भी उस आहारको छोड़ देते हैं। अज्ञानीको इसकी खबर नहीं है। देखो! अज्ञानीमें कैसी हठधर्मिता है? निज निधि अनन्त सुखदायक है उसका कौन स्मरण करता है? इसलिए उन्हीं जीवोंको श्रीगुरु–उपदेशामृतका पान करना योग्य है, उससे मोहका नाश होता है और अनुभव प्रकटता है, वह अब कहते हैं।

जीव संसारमें भटक रहा है। और कहते हैं कि पहले देशनालब्धि होनी चाहिए। अपने आप शास्त्र पढ़कर कोई धर्म प्राप्त कर ले ऐसा नहीं होता। सत्समागम करनेकी बात कही है। अनादि संसारी मिथ्यादृष्टि पहले ज्ञानीके निकट शुद्ध आत्मतत्त्वकी बात सुने और अंतरमें उतारे तब उसके मोहका नाश होता है और आत्माका अनुभव प्रकटता है। पात्रता हो वहाँ योग्य जीवको ज्ञानीकी देशनालब्धि प्राप्त होती ही है। देशनालब्धिके बिना मात्र शास्त्र पढ़नेसे अथवा अज्ञानीके उपदेशसे कदापि सम्यग्ज्ञान नहीं होता,—ऐसा निमित्त–नैमित्तिक सहज स्वतंत्र वस्तुका स्वभाव है।

प्रभु देहिं धरम ऊपदेश नित सदा बैन अमृत झरहिं;
तिन चरणकमल वंदन करत, पापपुंज पंकति हरहिं। १९

जिसे धर्म करना हो और शान्तिकी चाह हो उसे आत्माकी प्रतीति करनी चाहिए। आत्मानन्दका अनुभव होना उसे अनुभवप्रकाश कहते हैं। आत्मा शुद्ध चिदानन्द है, उसकी प्रतीति करके आनन्द प्राप्त करना उसे धर्म कहते हैं।

पहले क्या करना चाहिए? श्री जिनेन्द्रदेवकी आज्ञाकी प्रतीति करो। कुदेवादिको मानना वह जिनेन्द्रदेवकी आज्ञा नहीं है। जिनमें सच्चे देव–गुरु–शास्त्रका, नवतत्त्व आदिका यथार्थ वर्णन हो वह सच्चे शास्त्र हैं। सर्वज्ञ भगवान प्रणीत तत्त्वोंका विचार करे, जिनेन्द्रदेवके उपदेशानुसार गुरु उपदेश देते हैं, उस उपदेशका बराबर श्रवण करे। भगवानने किन तत्त्वोंको ग्रहण योग्य कहा है? चैतन्यप्रकाश अनन्त सुखधाम है, शरीर जड़ है, पुण्य–पापभाव हेय हैं, भगवान आत्मा ज्ञानप्रकाश है, वह अनन्त सुखका धाम है। भगवान आत्मा मलरहित है। त्रैकालिक द्रव्य एकसमयके संसारसे रहित है, वही शान्तिका कारण है।—ऐसा चिद्घन आत्माराम उपादेय है। निमित्त एवं विकाररहित आत्मा उपादेय है। यहाँ तो विकारको भी स्वभावकी अपेक्षासे पर कहा है। जिसे शान्तिकी इच्छा हो उसे अपने चिदानन्द आत्माको मानना चाहिए। आत्मा पर पदार्थोंसे तथा रागादिसे रहित है। शरीर, कर्मादि आत्माके नहीं हैं, तब फिर शरीर, कर्मादि आत्मामें क्या करेंगे? तथा पर्यायमें होनेवाले शुभाशुभ परिणाम वह विकार हैं, इसलिए हेय हैं और शुद्धआत्मा उपादेय है; मैं शुद्धचिदानन्द हूँ—ऐसा भेदज्ञान करना चाहिए। इसप्रकार भेदज्ञानसे स्वरूपकी प्राप्ति होती है वह सम्यग्दर्शन है। क्रियाकाण्ड, दान, पूजा, भक्ति धर्म नहीं है, किन्तु पुण्य है, धर्म तो स्वाश्रयरूप निर्विकल्प वीतरागपरिणति है।

अज्ञानी जीव पुण्यसे धर्म मानकर हर्षित होता है और पुण्यसे बड़ा लाभ मानता है और संतुष्ट होता है, परन्तु वह सब भ्रमभाव है। स्व–पर भेद विज्ञान करना वह धर्म है। उसका निरन्तर अभ्यास करना। मैं ज्ञानस्वरूप हूँ ऐसी प्राप्ति अनुभवमें होगी।

शरीर जड़ है, शरीरकी दशा उसके अपने आधीन है, आत्मा उसका कर्ता नहीं है। जो जीव निमित्तसे लाभ अथवा प्रभाव माने अथवा कर्मके उदयसे अपनेमें विकार माने उसमें परसे या कर्मसे भेदज्ञान करनेकी शक्ति नहीं है, उसमें विकारसे भेदज्ञान करनेकी शक्ति नहीं है। भगवान आत्मा हो या प्रतिमा हो, सम्मेदशिखर हो या शत्रुंजय हो—सब पर हैं, उनसे

श्री अजितवीर्य जिन-स्तुति	वर्तमान जिनदेव पद्म, लच्छन तिन छाजै, अजितवीर्य अरहंत, जगतमें आप विराजै;

धर्म नहीं है। कषायकी मन्दता करे तो पुण्य होगा, परसे तो पुण्य भी नहीं है। निमित्तसे लाभ–हानि नहीं है। रागसे लाभ नहीं है। स्वयं ज्ञानस्वभावी है—ऐसा अभ्यास निरन्तर करना। रागसे पर्यायमें हानि होती है परन्तु रागसे त्रैकालिक स्वभावमें लाभ–हानि नहीं है। संसारका औदयिकभाव परमपारिणामिकभावमें प्रविष्ट नहीं हो जाता।

श्री नियमसारमें चार भाव–औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिकको आवरणयुक्त कहा है, विभाव कहा और परिहार योग्य कहा है। चारों भाव द्वारा आत्मा जाना जा सके ऐसा नहीं है। चारों भाव पर्याय हैं। उनका आश्रय लेनेसे आत्मा गम्य नहीं होता। पर्याय भेदरूप है, इसलिए भेदका लक्ष छुड़वाने और अभेदका लक्ष करानेके लिए ऐसा कहा है। भेदके लक्षसे विकल्प उत्पन्न होता है।

साधक जीवको पूर्ण क्षायिकभाव प्रकट नहीं है। जो नहीं है उसका विचार करनेसे विकल्प उठता है, इसलिए वह परिहार करने योग्य है—ऐसा कहा है।

तत्त्वार्थसूत्रमें रागद्वेष, गति आदि औदयिकभावको स्वतत्त्व कहा है, क्योंकि उन–उन परिणामोंको अशुद्ध उपादानसे जीव स्वयं करता है, कर्म नहीं कराता। वह बतलानेके लिए स्वतत्त्व कहा है। यहाँ चारों भावोंको विभावभाव कहा है, क्योंकि वे चारों पर्यायें हैं, भेद हैं। भेदके आश्रयसे धर्म नहीं होता, इसलिए वह आदरणीय नहीं है, उसके आश्रयसे रागकी उत्पत्ति होती है। पारिणामिक चिदानन्दभावके आश्रयसे धर्म होता है—इसप्रकार जैसा है वैसा अर्थ समझना चाहिए।

यहाँ साधक जीव विचार करता है कि चैतन्यतत्त्वको उपादेय बनाकर चैतन्यतत्त्वकी प्राप्ति करे तो राग–द्वेष मिटे। साधकदशामें भक्ति आदिके भाव होते हैं, दया–दानादि तथा प्रभावनाके भाव उठते हैं, परन्तु ज्ञानी उनको हेय समझता है। दृष्टि तो स्वभावसन्मुख है और रागको नष्ट करनेका प्रयत्न है।

स्व तथा परका यथार्थ ज्ञान करना चाहिए, उससे राग–द्वेष मिटते हैं। आत्मामें परपदार्थोंका ग्रहण–त्याग नहीं है। आत्मा पर पदार्थोंका ग्रहण–त्याग कर सकता है ऐसा मानना वही मिथ्यात्व है। आत्मा पैसा खर्च नहीं कर सकता। आत्मा जड़की पर्यायका कर्ता–हर्ता नहीं है। आत्मा ज्ञाता है ऐसी प्रतीति करनेसे धर्म होता है। (क्रमशः) ✻

पद्मासन भगवंत ध्यान इक निश्चय धारहि,
आवहि सुरनरवृंद, तिन्हैं भवसागर तरहि,

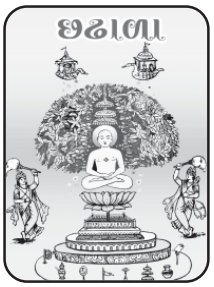

श्री छहढाला पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

(तीसरी ढाल, गाथा ४-५-६)

जीवतत्त्व और उसके भेदोंका वर्णन

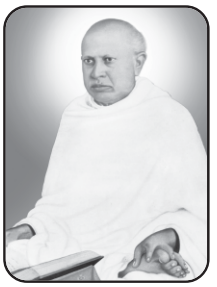

परमात्मपदके साधनेवाले मुनिवरोंकी दशा भी अद्‌भुत होती है...मानों छोटे से भगवान ! मुनिकी सौम्यमुद्रामें तो वीतरागताकी झलक वर्तती है...उपशमरसमें उनका आत्मा झूल रहा है। छठवें गुणस्थानके समय उन्हें मध्यम-अंतरात्मा कहा, लेकिन जब वे मुनि हुए तब प्रथम उन्हें शुद्धोपयोगमें सातवाँ गुणस्थान प्रकट हुआ था अर्थात् उत्तम अंतरात्मपना हुआ था। पश्चात् शुभ उपयोगमें आने पर उन्हें मध्यम कहा। लेकिन शुभरागको जो मोक्षमार्ग मानता है अर्थात् रागादि विभावोंको ही निजस्वभाव मानता है, ऐसे सम्यग्दर्शन रहित जीव तो बंधमार्गमें ही है, मोक्षके मार्गको वे जानते नहीं हैं।

सम्यग्दृष्टिने सर्वज्ञ परमात्माको श्रद्धामें लिया है। सर्वज्ञताको प्राप्त जीव जगतमें है, और मेरा आत्मा भी ऐसा सामर्थ्यवाला है—ऐसा धर्मी जानता है। परम अर्थात् उत्कृष्ट पर्यायरूप परिणमित आत्मा वह परमात्मा है। ऐसे परमात्मा अभी भरतक्षेत्रमें होते नहीं है, लेकिन विदेहक्षेत्रमें सीमंधर भगवान आदि लाखों जीव ऐसे परमात्मपने अभी भी साक्षात् विचरण करते है। यहाँ रहकर ऐसे सर्वज्ञ परमात्माकी पहिचान हो सकती है। सर्वज्ञपदकी जिन्हें श्रद्धा नहीं वे तो बहिरात्मा है और गृहीतमिथ्यादृष्टि है।

''जो जो देखी वीतरागने सो सो होसी वीरा रे'' ऐसा निश्चित करनेमें भी सर्वज्ञपदका स्वीकार आ जाता है। सर्वज्ञकी पहिचान बिना कोई बात करे तो यह यथार्थ नहीं है।

अहा, जिन्हें आत्माका संपूर्ण ज्ञान है, संपूर्ण सुख है, और रागका संपूर्ण अभाव है–ऐसी उत्कृष्ट पर्यायवाले सर्वज्ञ भगवान है–उनका स्वीकार सम्यग्दृष्टि ही करते है; बाह्यदृष्टिवाले जीवको (रागदृष्टिवाले जीवको) परमात्मा कैसे होते है उसकी खबर नहीं हैं।

नगर अजोध्या जन्म जिन, मात कननिका ऊरधरन;
तस चरनकमल वंदत भविक जै जै जिन आनंदकरन। २०

सर्वज्ञका स्वीकार वह तो अपूर्व तत्त्वज्ञान है, वह तो धर्मकी मूल नींव है। सर्वज्ञता कहो या आत्माका ज्ञानस्वभाव कहो, उसकी पहिचान बिना धर्मका प्रारम्भ होता नहीं है।

सातत्त्वमेंसे एक जीव तत्त्वको यथार्थ जानने पर उसकी पर्यायमें यह सभी प्रकार उसमें समाहित हो जाते है। 'सर्वज्ञ' अर्थात् एक समयमें सभीको अतीन्द्रियज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष जाननेवाले, और फिर भी जिन्हें राग-द्वेष नहीं, कोई संकल्प-विकल्प नहीं, जाननेमें थकान नहीं, निराकुल आनंद है। अहा! ऐसा परमात्मपना–वह आत्माकी ही एक दशा है।

शरीर होने पर भी ऐसा सर्वज्ञपना हो सकता है?

हां, शरीर शरीरमें है, भगवानको उसका कोई ममत्व नहीं है। जैसे शरीरका संयोग होने पर भी शरीरसे भिन्न आत्माका अनुभव होता है, वैसे सर्वज्ञता भी हो सकती है। जगतमें ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा है और मेरे आत्मामें भी ऐसा सामर्य है–ऐसा सम्यग्दृष्टि यथार्थ (स्वानुभवपूर्वक) जानता है। जिन्हें सर्वज्ञके अस्तित्वका विश्वास न हो उसे आत्माके ज्ञानस्वभावका ही विश्वास नहीं है।

निश्चय सम्यग्दर्शनमें तो धर्मी जीव निर्विकल्परूपसे शुद्ध आत्मतत्त्वमें ही 'अहं'की प्रतीति करता है; और वह सम्यग्दर्शनके साथ ज्ञानपर्यायमें इतना सामर्थ्य है कि ऐसे सर्वज्ञ परमात्माको भी वह निर्णयमें ले लेता है। अंतरमें अपना शुद्ध आत्मा तो निर्णयमें लिया है, और उसकी उत्कृष्ट पर्यायरूप परिणमित हुआ परमात्मा कैसा हो वह भी निर्णयमें आ गया है। शुद्धद्रव्यकी श्रद्धा करे उसके सामर्थ्यकी तो क्या बात? लेकिन उसके साथ रागसे पृथक् हुआ जो ज्ञान है उस ज्ञानके व्यवहारमें भी इतना सामर्थ्य हो गया है कि परमात्माको वह जान लेता है; बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा तीनोंको वह जान लेता है। द्रव्यरूप शुद्ध आत्मा, और उसकी पर्यायरूप त्रिविध आत्मा, उसका स्वरूप सम्यग्दृष्टि जैसा है वैसा जानता है। समस्त लोकालोकको और तीनकालको एक समयमें ज्ञानका ज्ञेय बनाये ऐसी महान अचिंत्य सामर्थ्य केवलज्ञानमें है; यहाँ संपूर्ण ज्ञान है तो सामने पूरा ज्ञेय एक साथ निमित्त है। बस, ज्ञानमें सर्व ज्ञेयों स्थिर हो गये, ज्ञान ज्ञानमें स्थिर हो गया कहीं भी कर्तृत्वबुद्धि या बदलावकी बुद्धि या राग-द्वेषकी बुद्धि न रही।—ऐसी दशावाले सर्वज्ञको सम्यग्दृष्टि जानता है, इतनी तो उसकी व्यवहारश्रद्धाका सामर्थ्य है; परमार्थश्रद्धा निर्विकल्प

वर्तमान वीसी करी, जिनवर वंदन काज;
जे नर पढें विवेकसों, ते पवहिं शिवराज। २१

है वह तो अपने आत्माको ही परमेश्वररूप अनुभवमें लेता है;—उसके सामर्थ्यकी तो क्या बात ! ऐसी श्रद्धा हो तब जीवको मोक्षका मार्ग खुलता है।

देखो, यथार्थ श्रद्धा करने हेतु जीवतत्त्वका वर्णन चल रहा है। निश्चयसे ज्ञायकतत्त्व एक अखंड शुद्ध है वह जीव है, व्यवहारमें उसके तीन प्रकार है। शास्त्रस्वाध्यायमें ऐसे तत्त्वोंका घोलन करते करते, अर्थात् कि ज्ञानको एकाग्र करते करते ज्ञानमें विशेष स्पष्टता होती जाती है। इसलिये वीतरागमार्गमें कहे हुए तत्त्वोंका बारम्बार मनन करने जैसा है।

सिद्धपरमात्मा—जिनको शरीर नहीं, मन नहीं, इन्द्रियाँ नहीं, राग नहीं, फिर भी केवलज्ञान है। ऐसे सिद्धपरमात्माको पहिचानते ऐसा निश्चित होता है कि आत्माका ज्ञान शरीर-मन-इन्द्रिय या रागके आधीन नहीं है। सिद्धपरमात्मा तो ज्ञानशरीरी है; ज्ञान ही आत्माका अंग है कि जो कदापि आत्मासे पृथक् होता नहीं। इसलिये कहा है कि—

ज्ञानशरीरी त्रिविध-कर्ममलवर्जित सिद्ध महन्ता,
ते हैं निकल अमल-परमातम भोगें शर्म अनंता।

ज्ञानशरीरी चैतन्यमय सिद्धभगवंतों सदाकाल अनंत आत्मिक सुखको भोगते हैं। ऐसे सिद्धको लक्षमें लेकर साधक कहते है कि—

'चेतनरूप अनुप अमूरत, सिद्धसमान सदा पद मेरो।'

—इस प्रकार अपने आत्मतत्त्वकी प्रतीति सहित परमात्माको जानता है। मात्र परलक्षसे जाने वह यथार्थ ज्ञान नहीं है।

इस जगतमें सर्वश्रेष्ठ सिद्धभगवंतों हैं; आत्माको अनंत आनंदको वे भोगते है, समस्त विश्वको जानते है; औदारिकादि पुद्गल शरीर उनको नहीं है इसलिये वे देहातीत अशरीरी है, लेकिन अपने ज्ञानादि गुणोंमें तन्मय होनेसे वे अशरीरी है। ज्ञान ही आत्माका जीवन है; आत्मा शरीरके संयोग बिना, आयुकर्म बिना, स्वयंके ज्ञानसे ही शाश्वत जीवित रहनेवाला है। ऐसा जीवन जीनेवाला सिद्ध भगवंत महंत है, भवका अंत करके वे महंत हुए हैं और अनंत सुखको भोगते है। महान आत्माको जाननेवाले सम्यग्दृष्टि जीवोंको भी महंत कहा जाता है, लेकिन यह सिद्धभगवान तो जगतमें सबसे बड़े महंत है। (क्रमशः)

सीमंधर जुगमंद्र बाहु ओ सुबाहु, संजात स्वयंप्रभु नांव तिहुं पन ध्याईये;
ऋषभानन अनंतवीर्य विशाल सूरप्रभ, वज्रधरनाथके चरण चित्त लाऊये।

शुद्ध ज्ञायकस्वभावका ध्यान

आत्मा देहसे पृथक्, ज्ञानस्वरूप है। उसका ज्ञान कहीं परके लक्षमें, पुण्य-पापमें रुकता है वह विकार है। अनादिसे स्वयंके स्वभावको भूलकर राग-द्वेष-शरीर-मन-वाणी आदिमें स्वयंपनेकी मान्यता की है, उसका नाम मिथ्यात्व और अधर्म है। वह विपरीत मान्यता कैसे टले उसकी बात आचार्यदेवने समझायी है।

जाननेवाला आत्मा शरीरसे तद्दन पृथक् है, उसके स्वभावमें विकार नहीं है, लेकिन वह स्वभावको भूलकर पुण्य-पापमें ही अपना स्वरूप मानकर चोर्यासीके अवतारमें भटकता है। चैतन्यको भूलकर अनादिसे विपरीत ध्यान किया है अर्थात् कि परमें ही ठहरा है और परके लक्षसे होनेवाले पुण्य-पापको अपना स्वभाव माना है। पुण्य-पापमें एकाग्रता वह मिथ्याध्यान है। पुण्य-पापरहित आत्माके शुद्ध ज्ञायकस्वभावका ध्यान पूर्वमें अनंतकालमें एक सेकन्ड भी किया नहीं है। मैं चैतन्यस्वभाव हूँ—ऐसे पहिचानकर उसमें ही ज्ञान ठहर जाय वह धर्मध्यान है—वह आत्मध्यान है। यदि एक सेकन्ड भी ऐसा ध्यान करे तो मुक्ति हुए बिना रहे नहीं।

शरीरादिकी क्रियायें जड़की है, वह जड़की क्रियाको मैं करूं ऐसा मानना वह चैतन्यमूर्ति आत्माका अज्ञान अर्थात् मिथ्याध्यान है। जैसे दर्पणकी स्वच्छता स्वयंको और परको जानती है, वैसे आत्माका चैतन्यस्वभाव स्व-पर-प्रकाशक दर्पण है, उसमें सब कुछ जाननेमें आ जाता है। लेकिन अपने प्रतिबिम्ब जाननेमें आते पदार्थोंको दर्पण अपना मानकर पकड़के रखता नहीं है, वैसे ज्ञानदर्पणमें शरीर-मन-वाणी, देव-गुरु-शास्त्र आदि पदार्थों ज्ञेयरूप जाननेमें आये ऐसा उसका स्वभाव है, लेकिन वह शरीरादिको अपना माने या उसमें बदलाव करे ऐसा ज्ञानदर्पणका स्वभाव नहीं है। ऐसे ज्ञानस्वभाववाले शुद्ध आत्माको जानकर ही उसमें प्रवृत्ति करता है उसे उसका ध्यान होता है, और उस ध्यानमें एक शुद्ध आत्माका ही अनुभवन प्रसिद्ध है, इसलिये उसका अनादिका मोह नाशको प्राप्त होता है। जो ज्ञान आत्मस्वभावकी ओर होकर उसमें ठहरा उस ज्ञानमें एक भगवान आत्माकी ही प्रसिद्धि है, वह मोहका अभाव है। ज्ञानकी स्वमें एकाग्रता उसका नाम सम्यक्ध्यान है और ऐसा ध्यान करनेवालेको मोहकी उत्पत्ति होती नहीं है अर्थात् अनादिका मोह छूट जाता है।

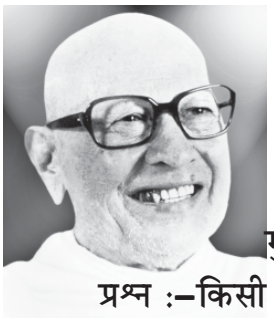

पूज्य गुरुदेवश्रीके साथ मुमुक्षुकी रात्रिचर्चा

प्रश्न :–सम्यक् श्रद्धा और अनुभवमें क्या अन्तर है ?

उत्तर :–सम्यक्श्रद्धान-प्रतीति तो श्रद्धागुणकी पर्याय है और अनुभव मुख्यतः चारित्रगुणकी पर्याय है।

प्रश्न :–किसी जीवका उपशमसम्यक्त्व छूट जाय और वह मिथ्यात्वमें आ जाय तो उसे ख्यालमें आता है कि मुझे सम्यक्त्व हुआ था ?

उत्तर :–हाँ, सम्यक्त्व छूट जानेके बाद थोड़े समय तक ख्यालमें रहता है, किन्तु लम्बे समयके पश्चात् भूल जाता है।

प्रश्न :–दर्शनपाहुडकी गाथा २१में कहा है कि हे जीव ! तू सम्यग्दर्शनको अन्तरंगभावसे ग्रहण कर। यहाँ बताये हुए अन्तरंगभावका तथा बहिरंगभावका भी अर्थ स्पष्ट कीजिए ?

उत्तर :–अंतरस्वभावके आश्रयसे परिणति प्रकट करना वह अंतरंगभाव है, ऐसी परिणति अंशमें प्रकट करना वह सम्यग्दर्शन है। नवतत्त्वकी श्रद्धा आदि रागभाव है, वह अंतरंगभाव नहीं लेकिन बहिरंगभाव है, अर्थात् कि उससे सम्यग्दर्शन होता नहीं है। बाह्यलक्षसे जो भाव होता है वह भी बहिरंगभाव है। आत्मस्वभाव शुद्ध चैतन्यमय है उसे अंतरके अंगोंमेंसे परिणति प्रकट कर। यह जड़ शरीरमेंसे सम्यग्दर्शन प्रकट होना नहीं है, वैसे ही देव-शास्त्र-गुरु या नव तत्त्वके विकल्पमेंसे भी तेरा सम्यग्दर्शन प्रकट होनेका नहीं है। इसलिये उन सभीका लक्ष छोड़कर तेरे चैतन्यरूपी शरीरमेंसे सम्यग्दर्शनको बाहर निकाल। जो पुण्य-पापके परिणाम होते है वह तेरा चैतन्य अंग नहीं लेकिन कार्मण अंग है। व्यवहार सम्यग्दर्शन भी कार्मण अंग है, चैतन्यको चूककर कर्मके सम्बन्धमें जो भाव उत्पन्न होता है वह बहिरंगभाव है, वह अंतरंगभाव नहीं है, और उसमेंसे सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति नहीं है।

'अंतरंगभाव' कहकर आचार्यदेवने सभी परभावोंका निषेध किया है। शरीरादिकी क्रिया तो जड़ है और व्रत, तप, पूजा, भक्ति, पडिमा आदिका शुभराग वह बहिरंगभाव है– विकार है, उससे आत्मकल्याण होता नहीं है। इसलिये वह जड़की क्रियामें और बहिरंगभावोंमें एकत्वबुद्धि छोड़कर (अर्थात् परभावोंमें आत्मबुद्धि छोड़कर) मात्र आत्मस्वभावका आश्रय करना वह अंतरंगभाव है और ऐसे भावसे सम्यग्दर्शन प्रकट होता है, वह ही आत्माका कल्याण है।

बाल विभाग

कपिल ब्राह्मणकी कथा

वनवास दरम्यान वनमें भ्रमण करते हुए सीताजीको प्यास लगी और वे आगे बढ़ते हुए एक गाँवमें कपिल ब्राह्मणके घर आये, ब्राह्मणीने सीताजीको पानी पिलाया इतनी देरमें घरका मालिक कपिल ब्राह्मण आया और उसने रामचंद्रजी सीताजी, लक्ष्मण आदिको अपशब्द कहे जिससे सीताजीने रामचंद्रजीको कहा कि ऐसे क्रोधीके घरमें नहीं ठहरना है और वनकी ओर प्रयाण किया, वर्षाऋतुका समय था रास्तेमें एक वटवृक्षकी कंदरा देखी जो घर समान लग रही थी वहाँ ठहरे। वहाँ पर एक दंभकर्ण नामक यक्ष रहता था उसने ऐसे तेजस्वी पुरुषोंको देखकर अपने स्वामीसे बात की तो उसके स्वामीने आकर अवधिज्ञानसे जान लिया कि यह बलभद्र–नारायण है इसलिये उनके प्रति वात्सल्य हुआ और क्षणमात्रमें वे जहाँ सो रहे थे वहाँ एक मनोज्ञ नगरीका निर्माण किया। यक्षाधिपतिने रामके लिये नगरी बनाई इसलिये यह रामपुरी कही जाने लगी। प्रातः ब्राह्मण जब लकड़ी लेने वनमें गया तो सुंदर नगरी दिखाई दी। रास्तेमें एक यक्षिणी मिली उससे पूछा कि इस नगरीके राजाको कैसे मिल सकता हूँ ? फिर यक्षिणीके कहे अनुसार उसने मुनिराजके पास जाकर धर्मश्रवण किया और श्रावकके व्रत अंगीकार किये और घर आकर ब्राह्मणीको भी धर्मका स्वरूप समझाया और गुरुके पास ले जाकर उसे भी श्राविकाके व्रत दिलवाये.....

एक दिन वह ब्राह्मणीको धर्मकी अभिलाषी जानकर कहने लगा, हे प्रिये! श्रीरामके दर्शनके लिये रामपुरी क्यों न जाय ? राम महापराक्रमी, निर्मल चेष्टावाले, कमलनयन, सर्व जीवों प्रति दयालु, भव्यजीवों पर वात्सल्य रखनेवाले है। आशावान प्राणीओंकी आशा पूरी करनेवाले, दरिद्री और पेट भरनेमें असमर्थ जीवोंको दरिद्रताके समुद्रसे पार उतारनेवाले और संपदा प्राप्त करानेवाले है। ऐसी उनकी कीर्ति पृथ्वी पर फैली हुई है इसलिये हे प्रिये! भेट लेकर चलते है, मैं छोटे बालकोंको अपने कंधे पर ले लूँगा।

ब्राह्मणीको ऐसा कहकर दोनों आनंदसे परिपूर्ण, उज्ज्वल वस्त्रोंसे शोभित रामपुरी चले। उनको मार्गमें भयानक नागकुमार दिखाई दिये, विकराल वदनवाले अट्टाहास्य करते व्यंतर दिखाई दिये। इस प्रकारका भयानक रूप देखकर वे दोंनों निष्कंप हृदयसे इस प्रकार भगवानकी स्तुति करने लगे : हे जिनेश्वर! आपको हमारा मन-वचन-कायासे नमस्कार हो। आप त्रिलोकवंद्य हो, संसारके कीचड़से पार करानेवाले हो, आप परम कल्याणरूप हो, इस प्रकार स्तुति करते दोनों चले जा रहे है। इन लोगोंको जिनभक्त जानकर यक्ष शांत हो गये।

वे दोनों जिनालयमें गये। 'जिनमंदिरको नमस्कार हो' ऐसा बोलकर, दोनों हाथ जोड़कर चैत्यालयकी प्रदक्षिणा की, अंदर जाकर स्तुति करने लगे : हे नाथ! कुगतिको देनेवाले मिथ्यामार्गको तजकर बहुत समय पश्चात् आपका शरण लिया है। मैं अतीतकालके, वर्तमानकालके और भविष्यकालके चौबीस तीर्थंकरोंकी वंदना करता हूँ। पांच भरत, पांच ऐरावत और पांच

चंद्रानन चन्द्रबाहु श्री भुजंगम इश्वर, नेमिप्रभु वीरसेन विद्यमान पाईये;
महाभद्र देवजस अजितवीरज 'भैया', वर्तमान-वीसको त्रिकाल सीस नाईये। २२

विदेहक्षेत्र, यह पंद्रह कर्मभूमिमें जो तीर्थंकर हो गये, अभी विद्यमान है और भविष्यमें होंगे उन सभीको हमारा नमस्कार हो। जो संसार समुद्रसे पार हुए और अन्यको पार करानेवाले ऐसे श्री मुनिसुव्रतनाथ भगवानको नमस्कार हो, जिनका यश तीनलोकमें प्रकाशमान है। इसप्रकार स्तुति करके, अष्टांग दंडवत् करके, ब्राह्मण पत्नीके साथ श्रीरामके दर्शन करने चला।

मार्गमें बड़े-बड़े महलोंको ब्राह्मणीको दिखाया और कहा : यह कुन्दनके पुष्प समान उज्ज्वल, सर्व कामनाको पूर्ण करनेवाला नगरीके मध्यमें श्रीरामका महल है, जिससे यह नगरी स्वर्ग समान शोभित है। इस प्रकार बात करता हुआ ब्राह्मण राजमहलमें गया। दूरसे ही लक्ष्मणको देखकर व्याकुल हुआ, मनमें सोचने लगा कि मैं अज्ञानीने यह निलकमल समान प्रभावाले श्यामसुंदरको दुष्ट वचनोंसे कष्ट दिया था, त्रास दिया था, पापी जीभको कर्कश लगे ऐसे वचन कहे थे। अब मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? पृथ्वीके छिद्रमें चला जाऊँ, अब मुझे किसका शरण है ? यदि मैं जानता होता कि ये यहाँ नगर बसाकर रह रहे है तो मैं देशत्याग करके उत्तर दिशामें चला जाता। ऐसा विकल्प करता हुआ ब्राह्मण ब्राह्मणीको छोड़कर भागा।

लक्ष्मणने उसे देख लिया था। फिर हसते हुए श्रीरामको कहा कि वह ब्राह्मण आया है और मुझे देखकर मृगकी भांति व्याकुल होकर भाग रहा है। रामने कहा उसे विश्वास दिलाकर यहाँ ले आओ। फिर कुछ मनुष्य दौड़कर उसे सांत्वना देते हुए ले आये। धुजता हुआ वह उनके पास आया, पश्चत् भयको छोड़कर दोनों भाईयोंके पास भेट रखकर 'स्वस्ति' शब्द बोलकर स्तुति करने लगा। (क्रमशः)

प्रौढ व्यक्तियोंके लिए जानने योग्य

प्रश्न तथा उत्तर

नीचे दिये गये विकल्पमेंसे प्रश्नका सही उत्तरसे पूर्ति करें।

(१) ..... से ही वस्तुके यथार्थ स्वरूपकी पहिचानसे ही अनादि कालसे रागद्वेष साथ एकाकाररूप परिणमता आत्मा भिन्नरूप अनुभवमें आता है।

(शास्त्र अभ्यास, ज्ञान, तत्त्वविचार)

(२) पूज्य गुरुदेवश्री कहते है कि ..... शास्त्र आगमोंका भी आगम है, लाखों शास्त्रोंका निचोड उसमें रहा है, साधककी यह कामधेनु है, चौदहपूर्वका रहस्य उसमें समाहित है। (पंचास्तिकाय, समयसार, तत्त्वार्थसूत्र)

(३) छठवेंसे ..... गुणस्थान तक मुनिदशा होती है। (चौदहवें, ग्यारहवें, बाहरवें)

(४) पूज्य गुरुदेवश्री शुद्धात्माका अपार महिमा बतलाते कहते हैं कि स्वभाव-सामर्थ्य अपेक्षासे वर्तमानमें ही तूं ..... है। (देव, परमात्मा, चैतन्य चक्रवर्ती)

(५) केवलज्ञान उत्पन्न होने बाद चार अघाति कर्मोंमें ..... कर्मकी स्थिति अल्प हो तो केवली समुद्घात होता है। (आयु, वेदनीय, गोत्र)

(६) सुवर्णपुरी सोनगढसे प्रकाशित आत्मधर्म मासिक वि.सं. ..... की सालमें मागशर माहमें प्रथम प्रकाशनका प्रारंभ हुआ। (२०००, २००२, २००५)

(७) ४७ शक्तिमें–जिसका प्रताप अखंडित है ऐसा स्वाधीनपनेसे शोभायमान जिनका लक्षण है वह ..... शक्ति है। (विभुत्व, प्रभुत्व, चिति)

(८) श्रावककी ग्यारह प्रतिमामें नववीं प्रतिमाको धारण करनेवाले ..... श्रावक कहे जाते है। (उत्तम, मध्यम, जघन्य)

(९) ..... गुणस्थानके अंतमें सर्वघाति कर्मोंका नाश हो जाता है।
(बारहवें, चौदहवें, ग्यारहवें)

(१०) अप्रत्याख्यान कषायका वासनाकाल ..... तक टिका रहता है।
(पंद्रह दिन, अंतर्मुहूर्त, छह महिना)

(११) अनंतानुबन्धी कषायका उदय ..... गुणस्थान तक होता है।
(दूसरे, प्रथम, तीसरे)

(१२) जिनेन्द्रदेवके दर्शनकी महिमा बतलाती ..... की कथा प्रसिद्ध है।
(मनोवती, रेवतीरानी, सुदर्शन शेठ)

(१३) जब जीव और आत्मा आस्रवोंका अंतर और भेद जाने तब उसे ..... होता नहीं है। (पापभाव, कषाय, बंध)

(१४) पूज्य बहिनश्रीके वचनामृत बोल-१३८में आता है कि ''भेदज्ञानके लिए तीव्र रुचि ही कार्य करती है। ज्ञायक, ज्ञायक, ज्ञायक उसकी ही रुचि हो तो ..... का झुकाव हुए बिना रहता नहीं।'' (आत्मा, पुरुषार्थ, द्रव्यदृष्टि)

(१५) देवदत्तका मकान इस प्रकार कहना वह ..... व्यवहारनयका कथन है।
(अनुपचरित असद्भूत, उपचरित असद्भूत, उपचरित सद्भूत)

(१६) पदार्थोंमें विशेषपना किये बिना अर्थात् विकल्प किये बिना पदार्थोंका सामान्यरूपसे ग्रहण उसे ..... कहते हैं। (ज्ञान, दर्शन, चैतन्य)

(१७) रागादिके उदयमें जो एकाकाररूप परिणमित नहीं होता लेकिन, यह पुद्गल कर्मरूप रागना विपाकरूप उदय है, यह मेरा भाव नहीं, मैं तो एक ज्ञायकभाव हूँ ऐसा ..... अनुभव है। (मिथ्यादृष्टि, केवलज्ञानी, सम्यग्दृष्टि)

(१८) सत् लक्षणवाला द्रव्य ..... होनेसे स्वतंत्र है।

(अस्तित्वगुणवाला, स्वतःसिद्ध, परिपूर्ण सामर्थ्यवाला)

(१९) जैसे चित्रकार अनेक प्रकारके चित्र बनता है उसी प्रकार ..... कर्मके निमित्तसे मनुष्य, देव आदि अवस्थाएँ होती है। (गोत्र, नाम, आयु)

(२०) जैसे अग्निकी एक छोटी चिनगारी विशाल वनको खाख कर देता है वैसे सम्यग्दर्शनरूपी चिनगारी क्षणमात्रमें अनंत .....को भस्म कर देती है।

(दुःख, मोह, कर्म)

'आत्मधर्म' (हिन्दी)के स्वामित्वका विवरण

फोर्म नं. ४, नियम नं. ८

समाचार पत्रिकाका नाम	:	आत्मधर्म
प्रकाशन तारीख	:	हर मासकी पाँचवीं तारीख
प्रकाशक एवं मुद्रकका नाम-पता	:	नविन पोपटलाल शाह, ७०१-७०२, आविष्कार टावर, चंदावरकर क्रोस रोड, बोरीवली (वेस्ट) मुंबई
राष्ट्रियता	:	भारतीय
प्रकाशनस्थान	:	श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, मु. सोनगढ, ता. शिहोर, जि. भावनगर
स्वामित्व	:	श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ-३६४२५०
सम्पादक	:	रमेशचंद्र व्रजलाल शाह, सोनगढ
मुद्रणस्थान	:	स्मृति ऑफसेट, १३-कहानवाडी, अंकुर स्कूल रोड सोनगढ-३६४२५०

मैं नविनभाई पोपटलाल शाह एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वासके अनुसार उपर्युक्त विवरण सत्य है।

ता. १-३-२०२६

निवेदक : नविनभाई पोपटलाल शाह,
मंत्री : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,
सोनगढ-३६४ २५०

सुवर्णपुरी समाचार :—

अध्यात्मतीर्थ सुवर्णपुरीका धार्मिक वातावरण अनंत उपकारमय पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी एवं उनके अनन्य भक्त पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके कल्याणवर्षी पुण्यप्रतापसे, आशीर्वादसे देव-गुरु-शास्त्रकी, धर्मकी आराधनामय रहता है एवं पं. रत्नश्री हिंमतभाई जे. शाहने बनाये हुए सुमधुर काव्यसे वातावरण भक्तिमय रहता है :—

प्रातः : ६-३० से ६-५० : पूज्य बहिनश्रीकी धर्मचर्चाकी ऑडियो-टेप

सुबह : ८-४५ से ९-४५ : परमागम श्री समयसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीका (१८वीं बारका) सीडी प्रवचन

दोपहर : ३-०० से ४-००: श्री समयसार कलशटीका पर पूज्य गुरुदेवश्रीका टेप प्रवचन

दोपहर : ४-०० से ४-३० : श्री जिनेन्द्र भक्ति

रात्रि : ७-४५ से ८-४५ : श्री समाधितंत्र पर पूज्य गुरुदेवश्रीका सीडी प्रवचन

* मानस्तंभका ७४वाँ वार्षिक प्रतिष्ठा दिन *

चैत शुक्ला-१० ता. २७-३-२०२६, शुक्रवारके दिन सोनगढके श्री मानस्तंभके प्रतिष्ठाका ७४वाँ वार्षिक दिन पूजा-भक्तिके विशेष कार्यक्रम सह मनाया जायेगा।

भगवान श्री महावीर जन्मोत्सव तथा पूज्य गुरुदेवश्रीका ९२वाँ संप्रदाय परिवर्तन महोत्सव

श्री महावीर भगवानका जन्मकल्याणक महोत्सव एवं पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीका 92वाँ संप्रदाय परिवर्तनका महोत्सव चैत्र शुक्ला 13 ता. 30-3-2026 सोमवारके दिन सुवर्णपुरीमें विशेष पूजन-भक्तिपूर्वक स्व. श्री हीराचंदभाई त्रिभोवनदास दामाणी परिवारकी ओरसे अत्यंत आनंदोल्लासपूर्वक मनाया जायेगा। यह मंगल प्रसंग पर सभी मुमुक्षुओंको सोनगढ पधारनेका हार्दिक निमंत्रण है।

प्रौढके लिये दिये गये प्रश्नोंके उत्तर

(१) ज्ञान
(२) समयसार
(३) बारहवें
(४) परमात्मा
(५) आयु
(६) २०००
(७) प्रभुत्व
(८) मध्यम
(९) बारहवें
(१०) छह महिना
(११) दूसरे
(१२) मनोवती
(१३) बंध
(१४) पुरुषार्थ
(१५) उपचरित असद्भूत
(१६) दर्शन
(१७) सम्यग्दृष्टि
(१८) स्वतःसिद्ध
(१९) नाम
(२०) कर्म

नोर्थ-साउथ दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल द्वारा

शुरुभक्ति सह अध्यात्मसाधना तीर्थ सुवर्णपुरीमें मनाया जा रहा है

अध्यात्मतत्त्व विभाकर, शुद्धात्मदृष्टा,

जिनशासन दिवाकर विदेहीधर्मदूत,

ज्ञायकयुगप्रवर्तक, स्वानुभूति संपन्न

परम पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामीका १३७वाँ

मंगल जन्मजयंती महोत्सव

अत्यन्त हर्षोल्लास सह निवेदन है कि–हमारे परम-तारणहार परमोपकारी पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामीका आगामी १३७वाँ वार्षिक मंगल जन्मोत्सव अध्यात्म-साधनातीर्थ सुवर्णपुरी (सोनगढ़)में नोर्थ-साउथ दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडलकी ओरसे अति आनन्दोल्लासपूर्वक मनाया जानेवाला है।

तदनुसार पूज्य गुरुदेवश्रीकी आगामी १३७वीं जन्मजयन्ती (वैशाख शुक्ला दोज)का मंगल महोत्सव सुवर्णपुरीमें ता. १५-४-२०२६, बुधवारसे ता. १९-४-२०२६, रविवार–पाँच दिवसीय 'श्री चौसठ ऋद्धि मंडल विधानपूजा', पूज्य गुरुदेवश्रीके आध्यात्मिक सी.डी.–प्रवचन, प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनकी विडियो धर्मचर्चा, धार्मिक शिक्षणवर्ग, एवं भजनमण्डली द्वारा देवगुरुभक्ति तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम इत्यादि अनेकविध रोचक कार्यक्रम सह मनायी जायेगी। साथमें भव्य जिनमंदिरोंके दर्शन-पूजन, जंबूद्वीप एवं श्री बाहुबलीजीके दर्शनका भी लाभ मिलेगा।

गुरुभक्तिके इस अनुपम अवसरसे लाभान्वित होनेके लिये गुरुभक्त सब मुमुक्षुओंको सोनगढ़ पधारनेके लिये हमारी ओरसे हार्दिक निमंत्रण है। आवास एवं भोजनव्यवस्था निःशुल्क रखी गई है।

[यह महोत्सवकी निमंत्रण पत्रिकाकी लेखनविधि सोनगढमें ता. ११-०३-२०२६ बुधवारके दिन है। सभी मुमुक्षुओंको सादर निमंत्रण है।]

निमंत्रक —

नोर्थ-साउथ दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडलके

जय-जिनेन्द्र

पूज्य गुरुदेवश्रीके हृदयोद्‌गार

• चैतन्यतत्त्वके लक्ष्यसे रहित जो कुछ किया वह सब सत्यसे विपरीत हुआ। सम्यग्ज्ञानकी कसौटी पर रखनेंसे उनमेंसे एक भी बात सच्ची नहीं निकलती। अतः जिन्हें आत्मामें अपूर्व धर्म-प्रकट करना हो उन्हें अपनी पूर्वमें मानी हुयी सभी बातोंको अक्षरशः मिथ्या जानकर, ज्ञानका सम्पूर्ण बहाव ही बदलना पड़ेगा। परन्तु जो अपनी पूर्व-मान्यताओंको रखना चाहते हैं व उनके साथ उक्त (धर्म-प्रकट करनेकी) बातका मेल बैठाना चाहते हैं तो अनादिसे चली आ रही भूल-भूलैयाका नाश नहीं होता; और ऐसा नया व अपूर्व सत्य उनकी समझमें नहीं आएगा।७३५।

• सर्वज्ञ परमेश्वरकी वाणीमें वस्तुस्वरूपकी ऐसी परिपूर्णता उपदिष्ट हुयी है कि प्रत्येक आत्मा अपने स्वभावमें पूर्ण परमेश्वर है; उसे किसी अन्यकी अपेक्षा नहीं, वैसे ही प्रत्येक जड़-परमाणु भी अपने स्वभावसे परिपूर्ण जड़ेश्वर-भगवान है। इस प्रकार चेतन व जड़, प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र व स्वतः ही परिपूर्ण है; किसी भी तत्त्वको किसी अन्य तत्त्वे आश्रयकी आवश्यकता नहीं है—ऐसा समझकर अपने परिपूर्ण आत्माकी श्रद्धा व आश्रय करना व परका आश्रय छोड़ना ही परमेश्वर होनेका पंथ है। ७३७।

• यह आत्मस्वभावकी बात—सूक्ष्म पड़े तो भी सम्पूर्ण मनोयोगसे समझने योग्य है। आत्मा, सूक्ष्म है तो उसकी बात भी तो सूक्ष्म ही होगी। जीवने एक स्वयंको समझने बिना, अन्य सब कुछ अनंत बार किया है। आत्माकी, परम सत्यकी, बात किसी विरल स्थानमें ही सुननेको मिलती है। कोई उपन्यास पढ़ते हैं। कोई धर्म सुनने जाएँ तो वहाँ इधर-उधरकी बातें सुनाते हैं, बाह्य-प्रवृत्तिक लिए कहते हैं; इस प्रकार बाह्य-क्रियामें संतोष बतलाकर धर्मका स्वरूप गाजर-मूली जितना सस्ता बना दिया है। आत्मस्वभावकी जो बात अनन्तकालमें भी न समझी उसे समझने के लिए तुलनात्मक बुद्धि होनी चाहिए। लौकिक बात व लोकोत्तर-धर्मकी बात बिल्कुल अलग-अलग हैं; तुरन्त समझमें न आए तो, निषेध न करना। जो निजस्वरूप है तो समझमें न आए वह इतना कठिन नहीं हो सकता। रुचिपूर्वक अभ्यास करे तो प्रत्येक जीव अपना आत्मस्वरूप समझ सकता है। ''केवल सत् समझनेकी चाह होनी चाहिए''। ७३८।

आत्मधर्म
मार्च २०२६
अंक-७, वर्ष २०

Posted at Songadh PO
Publish on 5-3-2026
Posted on 5-3-2026

Registered Regn. No. BVR-368/2024-2026
Renewed upto 31-12-2026
RNI Registration No. GUJHIN/2006/18882
वार्षिक शुल्क 9=00 आजीवन शुल्क 101=00

Printed & published by Navin Popatlal Shah on behalf of shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust and Printed at Smruti Offset, 13, Kahanwadi, Ankur School Road At-Songadh Pin-364250 and published from Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust At-Songadh, Ta. sihor, Dist. Bhavnagar Pin-364250.

Editor : Rameshchandra Vrajlal Shah.

If undelivered Please return to :—
Shri Dig. Jain Swadhyay Mandir Trust
SONGADH-364 250 (INDIA)
Phone No. (02846) 244334
Fax (02846) 244662

www.kanjiswami.org
email : contact@kanjiswami.org